नालन्दा



भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण

नालन्दा

लेखक

श्री अमलानन्द घोष

अनुवादक

केदारनाथ शास्त्री

प्रत्नकीर्तिमपावृणु

प्रकाशक

महानिदेशक, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण

जनपथ, नई दिल्ली

2006

प्रथम संस्करण 1963
द्वित्तीय संस्करण 2006

मूल्य : रु० ₹50/

मुद्रक : पेलिकन प्रेस, ए-45 नारायणा, फेज़-2,
नई दिल्ली-110028

विषय सूची

फलक-सूची

सामान्य विवरण

प्राचीन बौद्ध-स्थल नालन्दा के भग्नावशेष नालन्दा ज़िलान्तर्गत बड़गाँव नामक ग्राम के निकट अवस्थित हैं जो ज़िला मुख्यालय बिहार शरीफ़ से लगभग 12 कि.मी. दक्षिण, राजगीर (प्राचीन राजगृह) से लगभग 11 कि.मी. उत्तर तथा राजधानी पटना से लगभग 90 कि.मी. दक्षिण-पूर्व में स्थित है। सड़क मार्ग द्वारा यह राजगीर, बिहार शरीफ व पटना से भली भाँति जुड़ा हुआ है। निकटतम रेलवे-स्टेशन नालन्दा यहाँ से लगभग 2 कि.मी. की दूरी पर है।

नालन्दा भग्नावशेष परिसर पर्यटकों के भ्रमणार्थ प्रातः 9.00 बजे से सायंकाल 5.30 बजे तक खुला रहता है जबकि स्थानीय पुरातत्त्व संग्रहालय का अवलोकन प्रातः 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक किया जा सकता है। पुरास्थल व संग्रहालय में प्रवेश तथा फोटोग्राफी संबंधी कुछ नियम हैं जिनकी जानकारी स्थानीय पदाधिकारियों से प्राप्त की जा सकती है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के पास पर्याप्त संख्या में महत्त्वपूर्ण स्मारकों व पुरावशेषों के फोटोग्राफ उपलब्ध हैं जिन्हें निर्धारित मूल्य जमा करके महानिदेशक कार्यालय, नई दिल्ली अथवा अधीक्षण पुरातत्त्वविद्, पटना अंचल, पटना से क्रय किया जा सकता है।

भग्नावशेष परिसर में भ्रमण का शुल्क भारतीय पर्यटक के लिए रु. 5/- प्रति व्यक्ति तथा विदेशी पर्यटक के लिए $ 2 अथवा रु. 100/- प्रति व्यक्ति निर्धारित है जबकि संग्रहालय में प्रवेश शुल्क सभी के लिए रु. 2/- प्रति व्यक्ति है। पंद्रह वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के लिए प्रवेश निःशुल्क है।

नालन्दा में एक विश्राम गृह भी है जिसे अधिशासी अभियंता, लोक निर्माण विभाग, बिहार शरीफ (ज़िला-नालन्दा) को आवेदन कर आरक्षित कराया जा सकता है।

इतिहास

प्राचीन उल्लेख—नालन्दा[1] के इतिहास का आरम्भ ईसा पूर्व छठी और पाँचवीं सदियों से शुरू होता है। ये सदियां महावीर और बुद्ध के जन्म और जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। जैनियों के ग्रंथों के अनुसार नालन्दा का स्थान उस समय राजगृह के प्रसिद्ध नगर के आस-पास के क्षेत्र का ही उत्तर-पश्चिमी भाग गिना जाता था और 'बाहिरिया' के नाम से प्रसिद्ध था। यह स्थान इतने महत्त्व का था कि यहाँ महावीर तीर्थंकर ने चौदह चौमासे बिताये। पाली बौद्ध साहित्य में भी नालन्दा के विषय में बहुत उल्लेख हैं। इसमें लिखा है कि अपने पर्यटन में बुद्ध प्रायः यहाँ आते थे। यह स्थान उस समय बहुत समृद्ध, विस्तृत और घना आबाद था। इसमें 'पावारिक' नाम का एक आमों का बाग़ भी था। राजगृह से नालन्दा का फासला एक योजन[2] दिया गया है।

राजगृह के पास एक दूसरा स्थान नाल था। महासुदस्सनजातक में लिखा है कि यह जगह बुद्ध के प्रमुख शिष्य ज्येष्ठ शारिपुत्र का जन्मस्थान था। दूसरे ग्रन्थों में इसी स्थान का नाम नालक या नालकग्राम उपलब्ध होता है। उनमें लिखा है कि यही स्थान शारिपुत्र के जीवन की घटनाओं का केंद्र था[3]। परन्तु संस्कृत भाषा में रचित महावस्तु बौद्ध ग्रन्थ

---

1. पुराने साहित्य में नालन्दा और नालन्द दोनों नाम एक समान पाये जाते हैं।

2. उल्लेख के लिये, 'प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ दि फिफ्थ ओरियंटल कान्फरेंस 1 (लाहौर, 1930) में श्री हीरानन्द शास्त्री का लेख देखिये'।

3. श्री बी. सी. ला के द्वारा लिखी पुस्तक 'जिओग्राफी ऑफ अर्ली बुद्धिज़्म' देखिये (लंडन, 1932)

में लिखा है कि नालन्दा-ग्राम राजगृह से केवल आधा योजन दूर था और वह शारिपुत्र का जन्मस्थान था। इस उल्लेख का समर्थन तिब्बत के बौद्ध-साहित्य से होता है जिसमें सत्तरहवीं सदी के लेखक तारानाथ के द्वारा लिखा बौद्ध-धर्म का इतिहास भी समाविष्ट है[1]। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि नाल, नालक, नालकग्राम और नालन्दा आदि शब्द एक ही स्थान के वाचक भिन्न-भिन्न नाम थे।

नाम की उत्पत्ति—सातवीं सदी का प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है कि प्रचलित दन्तकथा के अनुसार इस स्थान का नालन्दा नाम इसी नाम के एक नाग के कारण पड़ा था जो यहाँ किसी ह्रद में निवास करता था। परन्तु चीनी यात्री के विचार में यह अधिक युक्तिसंगत था कि इस स्थान का यह नाम बुद्ध के कारण पड़ा हो। अपने किसी पूर्वजन्म में बुद्ध बोधिसत्व के रूप में इस प्रान्त के राजा थे। वह इतने उदार दानी थे कि अपनी दानवीरता के कारण उनका और उनकी राजधानी का नाम लोगों में नालन्द और नालन्दा प्रसिद्ध हो गया। इन दोनों शब्दों का अर्थ है न+अलम्+द (दा) अर्थात् अनन्त दान देने वाला (वाली)[2]।

तारानाथ का लिखा प्राचीन इतिहास—तारानाथ की सम्पत्ति में मौर्य सम्राट् अशोक ने ईसा पूर्व तीसरी सदी में शारिपुत्र के चैत्य के आगे भेंट चढ़ाई थी। यह चैत्य यहाँ पहले से ही विद्यमान था। अशोक ने यहाँ

---

1. एफ. ए. शाईफनर की जर्मन भाषा में लिखी ''तारानाथ'ज मेशिस्टे डेस बुद्धिस्मस इन इंडीन' (पृष्ठ 65) और एन. एल. डे की ''जिओग्राफीकल डिक्शनरी ऑफ एन्शेंट एंड मेडीवल इंडिया'' (लंडन, 1927) नाम पुस्तकें देखिये।

2. एस. बील, बुद्धिस्ट रेकार्डस ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड (लंडन, 1906), भाग 2, पृ. 167। नालन्दा शब्द की उत्पत्ति 'न + अलम्+द' से जो प्रस्तुत की गयी है वह अभीष्ट अर्थ को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं करती।

मंदिर भी बनवाया। इसलिये यह अशोक ही था जिसने सर्वप्रथम यहाँ नालन्दा विहार की नींव रखी थी[1]। यही इतिहासकार फिर लिखता है कि ई० दूसरी सदी के महायान सम्प्रदाय के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं रासायनिक नागार्जुन की शिक्षा नालन्दा के विश्वविद्यालय में ही हुई थी और अन्त में वह यहाँ का प्रधान आचार्य बन गया था। उसने यह भी लिखा है कि नागार्जुन के समकालीन सुविष्णु नामक एक ब्राह्मण ने हीनयान और महायान[2] सम्प्रदायों की उन्नति के लिये नालन्दा में 108 मंदिर बनवाये थे। तारानाथ ने यह चर्चा भी की है कि ईसवी चौथी सदी में बौद्धधर्म की माध्यमिक शाखा के दार्शनिक विद्वान् आर्यदेव[3] भी नालन्दा में आचार्य थे। पुनः ईसवी पाँचवीं सदी में[4] योगाचार बौद्धशाखा के दार्शनिक विद्वान् असङ्ग ने यहाँ अपने जीवन के अन्तिम 12 वर्ष बितांये थे और उसके बाद उसका भाई वसुबन्धु, जो उससे भी अधिक विख्यात था, नालन्दा का प्रधान आचार्य बना[5]।

गुप्त शासनकाल में—तारानाथ के पूर्वोक्त लेखों से ऐसा मालूम होता है कि नागार्जुन के समय में भी नालन्दा बौद्ध धर्म का केन्द्र था और बाद में भी कई सदियों तक इसी उन्नत दशा में रहा। परन्तु स्मरण रहे कि यहाँ जो खुदाई हुई है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि गुप्त समय के पहले भी यहाँ कोई आबादी थी। खुदाई में सबसे पुरानी वस्तुएं जो यहाँ मिलीं उनमें एक तो समुद्रगुप्त का ताम्रपट्ट (कूट) और दूसरी वस्तु कुमारगुप्त का एक सिक्का है। इसका समर्थन ह्वेनसांग के इस लेख से

---

1. शाइफनर, वही, पृ. 65
2. वही, पृ. 69
3. वही, पृ. 83
4. कई विद्वानों के मत में इसकी तिथि इससे एक सदी पहले है
5. शाइफनर, वही, पृ. 122

भी होता है कि "इस स्थान को शुक्रादित्य नाम के एक राजा ने पहले शुभ शकुन के कारण संघाराम बनाने के लिये चुना था। अनन्तर बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, बालादित्य और वज्र नामक उसके वंश के राजाओं ने इसके आस-पास और संघाराम बनवाये[1]।" इन नामों में से कुछ नाम गुप्तवंश के सम्राटों के थे। इसलिये यह माना गया है कि ये सब नाम पाँचवीं और छठी सदियों के बीच शासन करने वाले गुप्त सम्राटों के हैं।

नालन्दा के संघाराम कुमारगुप्त प्रथम और उसके बाद के गुप्त राजाओं ने बनवाये थे। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि ईसवी पाँचवीं सदी के चीनी यात्री फाहियान ने अपने यात्रा-इतिवृत्त में नालन्दा के किसी संघाराम का उल्लेख नहीं किया। उसने केवल इतना ही लिखा है कि 'यहाँ नालों नाम का एक गाँव है यहाँ शारिपुत्र का जन्म और मरण हुआ था, और इस स्थान पर एक स्तूप भी हैं[2]।' जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है, यह 'नालो' गाँव नालन्दा का वाचक हो सकता है। परन्तु यह बात विचारणीय है कि उस समय यहाँ सिवाय एक स्तूप के और कोई स्मारक नहीं था।

हर्ष के शासन काल में—ह्वेनसांग ने नालन्दा में 80 फुट ऊँची ताँबे की बुद्धमूर्ति देखी थी जिसे छठी सदी के आरम्भ में अशोक-राज के वंशज अंतिम राजा[3] पूर्णवर्मन् ने स्थापित किया था। इसमें सन्देह नहीं कि

---

1. ह्वेनसांग के द्वारा किये नालन्दा के विषय में बील रचित "ह्वेनसांग की जीवनी" पढ़िये, पृ. 167, उसकी जीवनी के लेखक 'हुई लि' ने कुछ और भी मनोरंजक विवरण दिये हैं। एस बील, लाइफ आफ ह्वेनसांग (लंडन, 1911), पृ. 109

2. लेग्गे, ट्रेवल्स ऑफ फाहियान (आक्सफर्ड, 1886), पृ. 61

3. बील, रेकार्ड्स, भाग 2, पृ. 118

कन्नौज के प्रतापी राजा हर्षवर्धन (ई॰ 606—647) ने अपने उदार दान से नालन्दा विश्व-विद्यालय की बहुत सहायता की थी। उसने यहाँ एक पीतल का संघाराम बनवाया। जब ह्वेनसांग ने इस स्थान का निरीक्षण किया तो यह संघारास अभी बन रहा था। उसकी जीवनी का लेखक लिखता है कि हषवर्धन एक सौ गाँवों की आमदनी नालन्दा के बौद्ध विहारों को स्थायी दान देता था और इन गाँवों में रहने वाले दो सौ गृहस्थी भिक्षुओं के भरण पोषण के लिये आवश्यक चावल, घी, दूध आदि खाद्य वस्तुएं देते थे। वह लिखता है कि क्योंकि विद्यार्थियों को जीवन-निर्वाह के लिये वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में मिल जाती थीं इसलिये उन्हें कहीं और जगह से ये मांगनी नहीं पड़ती थीं। इसी निश्चिन्तता के कारण दत्त-चित्त होकर विद्या के निरन्तर अभ्यास से वे शास्त्रों में पूर्ण योग्यता प्राप्त करते थे। यही निश्चिन्तता उनकी सफलता का बीजमंत्र थी। पूर्वोक्त उल्लेख से पता लगता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय के छात्रों को दैनिक जीविका के लिये भिक्षा नहीं मांगनी पड़ती थीं।

हर्ष नालन्दा के भिक्षुओं का बहुत सम्मान करता था और अपने आप को उनका दास कहता था[1]। कन्नौज के राजकीय समारोह के अवसर पर एक हज़ार के लगभग नालन्दा के भिक्षु उपस्थित थे। अतः नालन्दा की समृद्धि और सुव्यवस्था का मूल कारण राज-प्रसाद और राज-संरक्षण ही था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि राजाओं की कई पीढ़ियों ने उत्तरोत्तर यहाँ निर्माण का काम जारी रखा और कुशल शिल्पियों तथा कलाकारों की सेवाओं के उचित प्रयोग से अद्भुत वास्तुओं का स्वरूप देखने में आया[2]।

---

1. वही, लाईफ, पृ. 160
2. बील, लाईफ, 177

ह्वेनसांग—अपनी भारत यात्रा में ह्वेनसांग ने भी नालन्दा के कई मंदिरों और संघारामों का वर्णन किया है और बहुतों की उसने दिशाओं के क्रम से स्थिति भी बतलाई है उदाहरणतः बुद्धगुप्त का संघाराम उसके पिता शक्रादित्य के बनवाये संघाराम के दक्षिण में था, और बुद्धगुप्त के संघाराम के पूर्व में तथागतगुप्त का संघाराम था। बालादित्य का संघाराम तथागतगुप्त के संघाराम के उत्तर-पूर्व में और वज्र का संघाराम पश्चिम की दिशा में था। इसके अनन्तर मध्य भारत के किसी अज्ञात नामक राजा ने उत्तर की दिशा में एक बड़ा विहार बनवाया और इसके चारों ओर ऊँची चारदीवारी का निर्माण कराया जिसमें अंदर जाने के लिये केवल एक ही दरवाज़ा था। इनके अतिरिक्त ह्वेनसांग ने और भी संघारामों और स्तूपों की लंबी सूची दी है जो उसने अपने समय में यहाँ देखे। नालन्दा के वर्तमान ध्वंसों की चीनी यात्री द्वारा वर्णित प्राचीन स्मारकों से एकात्मता सिद्ध करने का जो प्रयास किया गया है वह बहुत कम सफल सिद्ध हुआ है इस असफलता का कारण यह है कि ह्वेनसांग के समय से लेकर नालन्दा के उजाड़ हो जाने तक छः सदियों का जो अंतर पड़ा उसमें कई नये वास्तु बने और पुरानों का रूप बदल गया।

पहले पहल ह्वेनसांग जब नालन्दा पधारा तो लोगों ने उसका हार्दिक स्वागत किया था। यह यात्री यहाँ लंबे समय तक रहा। वह लिखता है कि नालन्दा के विश्वविद्यालय में विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इनमें महायान और हीनयान सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रंथ, हेतुविद्या (न्याय), शब्दविद्या (व्याकरण) और चिकित्सा-विद्या (आयुर्वेद) शामिल थे। इनके अतिरिक्त अथर्ववेद सहित समस्त वेद तथा हिन्दू धर्म के अन्य शास्त्र भी पढ़ाये जाते थे। चीनी यात्री के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय में नालन्दा शिक्षा एवं विद्या का अद्वितीय केन्द्र था।

''यहाँ के निवासी कई हज़ार भिक्षु उच्चकोटि के विद्वान् तथा गुणी हैं। वे बहुत योग्य हैं और उनमें सैकड़ों ऐसे विद्वान् हैं जिनकी ख्याति दूर-दूर के देशों में पहुँच चुकी है। वे शुद्ध एवं आदर्श चरित्र के साधु हैं और अपने धर्म का आचरण निष्कपट हृदय से करते हैं। संघ के नियम बहुत कड़े हैं। भारत के सब प्रदेशों के लोग उनका सम्मान और अनुसरण करते हैं। गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने के लिये दिन भर का काल काफी नहीं होता। प्रातःकाल से रात तक ऐसे प्रश्नों पर विमर्श होता रहता है। वृद्ध और युवक एक दूसरे की सहायता करते हैं जिन्हें त्रिपिटक के विषयों पर विचार करने का सामर्थ्य नहीं ऐसे भिक्षुओं का बहुत कम आदर होता है और वे लज्जा से छिपे रहते हैं। शास्त्रार्थ में शीघ्र ख्याति प्राप्त करने तथा शंकाओं के समाधान चाहने वाले विद्वान् दूर-दूर के नगरों से यहाँ बहुत संख्या में आते हैं। ऐसा करने से उनकी विद्वत्ता की बहुत प्रसिद्धि होती है। इसके लिये कई व्यक्ति अपने आप को नालन्दा के स्नातक कह कर लोगों में सम्मान प्राप्त करते हैं। शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिये यदि बाहर से कोई विद्वान् आए तो नालन्दा विश्वविद्यालय का द्वारपाल उनकी योग्यता की परीक्षा के लिये कुछ कठिन प्रश्न करता है इन प्रश्नों का उत्तर न दे सकने के कारण बहुत से विद्वान् वहीं से वापिस चले जाते हैं। विद्यालय में प्रवेश के लिये विद्यार्थी को पहले प्राचीन और नवीन ग्रंथों का गहन अध्ययन करना आवश्यक है। अतः प्रवेश के लिये आये हुए विद्यार्थियों को शास्त्रार्थ में पहले अपनी योग्यता की परीक्षा देनी पड़ती है नवागन्तुक दस विद्यार्थियों में सात या आठ ऐसे होते हैं जो इस परीक्षा में सफल नहीं उतरते''।

नालन्दा में ह्वेनसांग का भारतीय नाम मोक्षदेव था। उसके चले जाने

पर भी चिरकाल तक नालन्दा के निवासी उसे इसी नाम से स्मरण करते थे। उसके चीन लौट जाने के कुछ वर्ष बाद प्रज्ञादेव नाम के नालन्दा के एक भिक्षु ने उसे वस्त्रों का एक जोड़ा भेजा था और साथ ही यह भी लिखा था कि नालन्दा के उपासक ह्वेनसांग की स्मृति में प्रतिदिन प्रणाम और अभिवदन की भेंट चढ़ाते थे।

इस समय नालन्दा की ख्याति पूर्व के समस्त देशों में व्यापक रूप से फैल चुकी थी। इन देशों में यह स्थान बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और शिक्षा का केन्द्र माना जाता था। इसका समर्थन इस तथ्य से होता है कि ह्वेनसांग के चले जाने के बाद तीस वर्षों के अंदर कम से कम ग्यारह चीनी और कोरियन यात्रियों ने नालन्दा की यात्रा की[1]।

ई-त्सिग—ह्वेनसांग के बाद दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्री जो भारत में आया वह ई-त्सिग था। वह ई॰ 673 में भारत पहुँचा और बहुत देर तक नालन्दा में अध्ययन करता रहा। उसने अपने लेखों में नालन्दा के भिक्षुओं के जीवन का बहुत विशद विवरण दिया है। इस जीवन को आदर्श मान कर उसने लिखा है कि समस्त संसार के बौद्धों को इसका अनुसरण करना चाहये। उसके अनुसार नालन्दा विहार के भिक्षुओं की संख्या तीन हज़ार से अधिक थी। इनका भरण-पोषण पहले राजाओं के द्वारा दान दिये हुए दो सौ से अधिक गाँवों की आमदनी से होता था[2]। उसने पाठ्य विषयों का भी विवरण दिया है। इनमें बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के अतिरिक्त न्याय, दर्शन और संस्कृति व्याकरण का विशेष अध्ययन

---

1. यात्रियों की सूची के लिये देखिये 'बील, लाईफ' पृ. 27

2. जे. तककुसु, ए रेकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन (आक्सफर्ड, 1896), पृ. 65 और 154

समाविष्ट था[1]। वह उस कठिन अनुशासन और विनय की भी चर्चा करता है जो भिक्षुओं के जीवन में पाया जाता था। भिक्षुओं की दिनचर्या का नियंत्रण एक घटीयंत्र से होता था[2]।

पालवंश के राजाओं का शासनकाल—पालवंश के राजाओं ने आठवीं से बारहवीं सदी तक शासन किया। वे राजा महायान सम्प्रदाय के अनुयायी और संरक्षक थे अपने समय में उन्होंने विक्रमशिला, सोमपुर, ओदन्तपुरी और जागद्दल स्थानों में भी विहार बनवाये[3]। इन बहुत से बौद्ध केन्द्रों के बन जाने तथा धर्माचार्यों का काम बँट जाने के कारण नालन्दा का महत्त्व अवश्य कुछ घट गया होगा। तारानाथ ने यह भी लिखा है कि नालन्दा का नियंत्रण विक्रमशिला विहार के अध्यक्ष के अधीन था[4]। फिर भी ऐसे शिलालेख और साहित्यिक प्रमाण काफी हैं जिनसे सिद्ध होता

---

1. तककुसु, वही, पृ. 167। इससे पता लगता है कि यहाँ विद्यार्थियों को अष्टाध्यायी समेत पाणिनि व्याकरण के समस्त ग्रंथ पढ़ाये जाते थे। परन्तु ऐसा होने पर भी आश्चर्य है कि संस्कृत में लिखे बौद्ध ग्रंथ व्याकरण की दृष्टि से बहुत अशुद्ध हैं।

2. वही, पृ. 145

3. विक्रमशिला की नींव राजा धर्मपाल ने रखी थी (शाईफनर, वही, पृ. 217)। इस समय इसके खंडहर को पथारघाटा कहते हैं जो बिहार के ज़िला भागलपुर में विद्यमान हैं। तारानाथ (वही, पृ. 209) के अनुसार सोमपुर विहार की स्थापना धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल ने की थी। इस विहार के ध्वंस पहाड़पुर स्थान में हैं जो पूर्वी बंगाल के राजशाही ज़िले में स्थित हैं। एक लेख के अनुसार, जो यहाँ मिला है, इस विहार का नाम धर्मपाल के नाम पर रखा गया था। ओदन्तपुरी अथवा उद्दण्डपुर विहार नालन्दा के समीप था। इसे गोपाल अथवा देवपाल ने बनवाया था। वही, पृ. 204 और 206। इसकी एकात्मता विहार नाम स्थान से है जो ज़िला पटना में विद्यमान है। जागद्दल को रामपाल ने उत्तरी बंगाल के किसी स्थान में बनवाया था। यह राजा पालवंश के अंतिम राजाओं में से एक था।

4. शाईफनर, वही, पृ. 218

है कि पाल राजा नालन्दा की बौद्ध संस्थाओं के भरण पोषण के लिये उदार हृदय से दान देते रहे।

विख्यात विद्वान्—इस प्रसंग में उन विख्यात विद्वानों का उल्लेख करना आवश्यक है जिनके अगाध पाण्डित्य और पवित्र जीवन के कारण नालन्दा का यश देर तक सुरक्षित बना रहा। ऊपर निर्देश किया गया है कि तारानाथ के लेखों के अनुसार नागार्जुन, आर्यदेव, असङ्ग और वसुबन्धु नाम महायान सम्प्रदाय के प्रारम्भिक दार्शनिक विद्वान् नालन्दा के महा-पण्डित थे। इनके अनन्तर दिङ्नाग का नाम आता है। इसने मध्य-युग की नवीन तर्कशैली का आविष्कार किया। यह दक्षिण भारत का रहने वाला था। शास्त्रार्थ में एक ब्राह्मण विद्वान् को परास्त करने के लिये इसे नालन्दा बुलाया गया था। इस विजय के उपलक्ष्य में नालन्दा विश्वविद्यालय की ओर से इसे तर्क पुङ्गव[1] की उपाधि दी गयी थी। दिङ्नाग के अनन्तर नालन्दा का प्रसिद्ध पण्डित धर्मपाल था जो ह्वेनसांग के यहाँ आने के कुछ समय पहले अपने पद से निर्मुक्त हो चुका था। इस चीनी यात्री के समय नालन्दा विहार का अधिष्ठाता शीलभद्र था। उसने इसी महा पण्डित से बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था। यात्री ने इसके पाण्डित्य और वयैक्तिक गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। शीलभद्र का उत्तराधिकारी सम्भवत: धर्मकीर्ति था। तारानाथ ने लिखा है कि इस अंतिम बौद्धाचार्य ने शास्त्रार्थ में कुमारलील नाम के एक ब्राह्मण दार्शनिक को परास्त किया था[2]। धर्मकीर्ति के अनन्तर नालन्दा का प्रसिद्ध पण्डित शान्तरक्षित हुआ जो तिब्बत के राजा ख्रि-सोन-देउ-त्सन के निमंत्रण पर

1. शाइफनर वही, पृ. 131

2. यह सम्भावना कि कुमारलील प्रसिद्ध ब्राह्मण मीमांसक कुमारिल ही था संगत प्रतीत नहीं होती, क्योंकि कुमारिल की जीवन घटनाएं बाद की हैं।

वहाँ गया और कई वर्ष वहाँ रहकर अन्त में सन् 762 में वहीं परलोक सिधारा। प्राय: इसी समय पद्मसम्भव भी तिब्बत गया और वहाँ उसने लामा-धर्म की संस्था का सूत्रपात करके बहुत ख्याति प्राप्त की। नालन्दा के लिये यह बड़े गौरव की बात थी कि इसके एक आचार्य ने तिब्बत के धर्म को ऐसा रूप दिया जो आज भी वहाँ प्रचलित है।

अत: यह बात स्पष्ट है कि नालन्दा विश्व-विद्यालय में ऐसे-ऐसे उच्च कोटि के धर्माचार्य हुए जिनका यश दूर-दूर के देशों में पहुँचा और वहाँ चिरकाल तक जीवित रहा। यह कहावत सत्य है कि "नालन्दा का विशद इतिहास वस्तुत: महायान बौद्ध सम्प्रदाय का इतिहास है[1]।"

प्राचीन लेखों तथा साहित्य में नालन्दा के सम्बन्ध में उल्लेख— प्राचीन लेखों तथा ग्रन्थों में दिये निम्नलिखित उल्लेख नालन्दा के लुप्त इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता देते है—

(1) बिहार शरीफ के पास शाहपुर स्थान से प्राप्त एक मूर्ति पर खुदा लेख जिसकी तिथि हर्ष सम्वत् 66 (ई० 672-73) है। यह लेख आदित्यसेन के शासनकाल का है और इसमें लिखा है कि यह मूर्ति नालन्दा के महाग्रहार में स्थापित की गयी थी[2]।

(2) मुद्गगिरि (मुंगेर) से जारी किया हुआ देवपाल (ई० 810-850) का ताम्रपट्ट शासन। इसमें लिखा है कि सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) के महाराजा

---

1. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स, भाग 9, (एडिनवरा, 1917), नालन्दा।

2. जे. एफ. फ्लीट, गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स, कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् (कलकत्ता, 1888), पृ. 2081 ज्ञात नहीं कि वर्तमान समय में यह मूर्ति कहाँ है। सम्भव है कि यह शुद्ध शब्द महाविहार था।

बालपुत्रदेव की दूत के द्वारा प्राप्त प्रार्थना पर देवपाल ने अपने शासनकाल के उनतालीसवें वर्ष के कार्तिक मास की 21 प्रविष्ट को श्रीनगर (पटना) भुक्ति के अन्तर्गत ज़िला राजगृह में पाँच गाँवों का दान दिया। यह दान सुमात्रा के राजा के बनवाये विहार में रहने वाले भिक्षुओं के भरण पोषण और हस्तलिखित पुस्तकों के प्रस्तुत करने के लिये था। यह ताम्रपट्ट संघाराम 1 के ध्वंस में पाया गया था और अब इंडियन म्यूज़ियम कलकत्ता में है[1]।

(3) हिल्सा (ज़िला पटना) से प्राप्त तारादेवी की मूर्ति पर लेख जो देवपाल के शासन के पैंतीसवें वर्ष में लिखा गया था। इसमें मञ्जुश्रीदेव नामक नालन्दा के एक भिक्षु का उल्लेख है[2]।

(4) घोस्रवन (ज़िला पटना) से प्राप्त देवपाल के शासनकाल का लेख। इसमें देवपाल के द्वारा नालन्दा की देखभाल के लिये नियुक्त वीरदेव नाम के भिक्षु के कामों का विवरण है[3]।

(5) बड़गाँव गाँव (नालन्दा) के एक जैनमंदिर में राज्यपाल के शासनकाल (ई॰ 908–35) के चौबीसवें वर्ष में लिखा लेख[4]।

(6) सन् 1862 में कनिंघम के द्वारा नालन्दा से उपलब्ध वागीश्वरी देवी की मूर्ति पर खुदा लेख। इसमें दर्ज है कि गोपाल द्वितीय (अभिषेक तिथि ई॰ 935) के शासनकाल के पहले वर्ष यह मूर्ति स्थापित की गयी थी[5]।

---

1. एपिग्राफिया इंडिका, भाग 17 (1923–24), पृ॰ 310
2. जर्नल बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 10 (1924),
3. ए. के. मैत्र, गौडलेखमाला (राजशाही, 1913), पृ॰ 45
4. इंडियन एंटिक्वरी, 47 (1918), पृ॰ 110
5. मैत्र, वही, पृ॰ 86

(7) नेपाल की हस्तलिखित पुस्तक अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता की प्रति जो महीपाल प्रथम (ई० 988-1038) के शासनकाल के छठे वर्ष में लिखी गयी थी[1]।

(8) महीपाल प्रथम के शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष की तिथि वाला नालन्दा का शिलालेख जो ई० 1863 में उपलब्ध हुआ। इसमें लिखा है कि नालन्दा अग्निकांड से नष्ट हो गया था और बाद में इसका पुनः निर्माण हुआ था[2]।

(9) बाडलियन पुस्तकालय में सुरक्षित अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता की हस्तलिखित प्रति। यह प्रति रामपाल (ई० 1077-1120) के शासनकाल में नालन्दा में लिखी गयी थी[3]।

(10) इसी पुस्तक की हस्त-लिखित प्रति जो रायल एशियाटिक सोसायटी के अधिकार में है। यह बारहवीं सदी के उत्तरार्ध में गोविन्दपाल के शासनकाल में लिखी गयी थी[4]।

नालन्दा का विनाश—नालन्दा के विनाश का पृथक् विवरण देना सम्भव नहीं है। भारत से बौद्धधर्म के लुप्त हो जाने के इतिहास का यह केवल एक अध्याय है।

ह्वेनसांग के वर्णन से पता लगता है कि जब उसने भारत की यात्रा की तो बौद्धधर्म धीरे-धीरे अवनति की ओर लुढ़क रहा था। बौद्ध-धर्म

---

1. प्रोसीडिंग्स एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1899, पृ. 69
2. मैत्र, वही पृ. 101
3. केटलाग ऑफ दि संस्कृत मेन्युस्क्रिप्टस इन दि बाडलियन लाइब्रेरी, 2, (आक्सफोर्ड, 1905), पृ. 250
4. जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी, एन. एस., 1876, पृ. 3

के महत्वपूर्ण प्राचीन केंद्र स्थान उजड़ रहे थे, यद्यपि कुछ नये केन्द्र, जैसे पूर्व में नालन्दा, पश्चिम में वलभी, और दक्षिण में कांची अस्तित्व में आ रहे थे। इसके थोड़ी देर बाद अन्य प्रान्तों से बौद्धधर्म के पांव उखड़ गये, केवल बिहार और बंगाल में यह जीवित रहा जहाँ पाल राजाओं की संरक्षता में कुछ समय तक इसकी प्राणरक्षा होती रही। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब बौद्धधर्म लोकप्रिय नहीं था, और इन प्रान्तों में भी यह अपने विहारों और संघारामों की चारदीवारी के अंदर तक ही सीमित हो गया था। इन स्थानों में जिन स्थूल धर्मांगों का आचरण होता था उनका सरल हीनयान अथवा प्रारम्भिक महायान के साथ बहुत कम सादृश्य था। अब बौद्धधर्म में तांत्रिक क्रियाओं का प्रचुर समावेश हो चुका था। लोगों में प्रचार किया जाता था कि यंत्र मंत्रों में अभीष्ट फल देने की अलौकिक शक्ति है और इन विचारों के प्रचारक ऐसी क्रियाओं को गुप्त रखते थे।

ईसवी आठवीं सदी में कुमारिल और शङ्कराचार्य जैसे दार्शनिकों और ब्राह्मण धर्माचार्यों के प्रचंड विरोध ने बौद्धधर्म को और भी क्षीण और दुर्बल बना दिया होगा। कहा जाता है कि इन दोनों आचार्यों ने समस्त भारत की यात्रा की थी और स्थान-स्थान में बौद्ध आचार्यों को परास्त करके उन्हें अपने सिद्धान्त मानने के लिये विवश किया। बौद्ध-धर्म पर अंतिम प्रहार मुसलमान आक्रमणकारियों ने किया। मुसलमानों के अपने लेखों से पता लगता है कि उनहोंने भिक्षुओं को देश से भगा दिया था और उनके मठों और संघारामों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इस तरह लोगों की सहानुभूति और सहायता के बिना निःसहाय बौद्धधर्म अंतिम प्रहार के कारण भारत से सदा के लिये विदा हो गया।

मुसलमान इतिहासकार मिनहाज ने उस घटना का विशद वर्णन किया है जिस तरह मुहम्मद बखतियार ख़िलजी ने पश्चिमी बिहार के एक

शहर पर अचानक आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इस शहर को लोग जिसे बिहार (संस्कृत-विहार) कहते थे और यह स्थान विद्या का पीठ था[1]। यह शहर सम्भवतः नालन्दा ही था। तारानाथ ने लिखा है कि तुर्कों ने तमाम मगध को जीतकर बहुत से संघारामों को नष्ट कर दिया था। नालन्दा में उन्होंने बहुत विनाशकांड किया और इस आतंक से भयभीत होकर सब भिक्षु दूसरे देशों को भाग गये[2]।

पग-सम-जोन-जंग नाम एक दूसरे तिब्बती ग्रन्थ में लिखा है कि तुर्कों के आक्रमण के अनन्तर मुदित भद्र नाम के एक महात्मा ने ध्वस्त मंदिरों और चैत्यों का उद्धार कराया। 'इसके कुछ काल के अनन्तर मगध के राजा के मंत्री कुकुटसिद्ध ने नालन्दा में एक मंदिर का निर्माण कराया और जब यहाँ धार्मिक प्रवचन हो रहा था तो दो बहुत क्रोधी तीर्थिक (हिंदू) साधु अचानक आ गये। कुछ शरारती नौजवान भिक्षुओं ने घृणा से उन पर गंदा पानी फेंका। इससे तीर्थिक आग बबूला हो गये। अपनी शारीरिक शुद्धि के लिये बारह वर्ष तक सूर्य की आराधना करने के अनन्तर उन्होंने एक अग्निहोत्र यज्ञ का अनुष्ठान किया, और अग्निकुण्ड से धधकते हुए कोयले उठाकर बौद्ध मंदिरों में फेंके आदि। इससे जो अग्निकांड पैदा हुआ उसने रत्नोदधि नामक नालन्दा के एक पुस्तकालय का विनाश कर दिया[3]।

नालन्दा के खंडहर से घिरे हुए बड़गाँव नामक गाँव का यूरपीन के द्वारा पहला वर्णन बुकेनन हेमिल्टन के हाथ का है। उन्नीसवीं सदी के पहले चरण में जब उन्होंने इस स्थान का निरीक्षण किया तो उनको यहाँ

1. तबकात-ए-नासिरी (अनुवाद), एच.जी. रेवर्टी (कलकत्ता, 1881), पृ. 552
2. शाइफनर, वही, पृ. 94
3. एस. सी. विजयभूषण, हिस्टरी ऑफ इंडियन लाजिक (कलकत्ता, 1921), पृ. 516

से कुछ हिंदू और बौद्ध मूर्तियाँ प्राप्त हुईं[1]। परन्तु इस खंडहर की प्राचीन नालन्दा से एकात्मता सिद्ध करने का श्रेय अलेग्ज़ेंडर कनिंघम को है जिन्होंने चीनी यात्रियों के द्वारा दिये दिशाओं और दूरी के संकेतों तथा मूर्तियों पर अंकित लेखों की सहायता से इस सदी के तीसरे चरण में यह सफलता प्राप्त की थी। अपनी पुस्तक में उन्होंने नालन्दा के खंडहर की उस समय की दशा तथा वहाँ से प्राप्त पुरानी वस्तुओं का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने ह्वेनसांग के द्वारा वर्णित मंदिरों और संघारामों को इन ध्वंसों में तलाश करने का प्रयत्न भी किया। वस्तुतः यह कनिंघम ही थे। जिन्होंने संसार के पुरातत्त्वज्ञों का ध्यान इस स्थान के महत्त्व की ओर केंद्रित किया[2]। कुछ वर्षों के अनन्तर एम॰ ए॰ ब्राडले ने चैत्य स्थल 12 के ध्वंसों में कुछ अवैध खुदाई कराई और इस पर एक पुस्तक भी प्रकाशित की[3]।

ई॰ 1915–16 से लेकर लगभग बीस वर्ष तक भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने यहाँ खुदाई कराई। इतने लंबे काल में इस विभाग ने जो विशद खनन, स्मारकों का संरक्षण और पुरानी वस्तुओं का संग्रह यहाँ किया इससे नालन्दा की ख्याति दूर दूर तक फैल गयी है। अतः किसी भी पुरातत्त्व प्रेमी को नालन्दा देखे बिना अपनी यात्रा समाप्त नहीं करनी चाहिये।

3. स्मारक

नालन्दा के खुदे हुए स्मारकों को देखने के लिये जो सड़क बनाई गयी

---

1. मार्टिन, ईस्टर्न इंडिया, भाग 1 (लंडन, 1838), पृ॰ 94
2. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग 1 (शिमला 1871) पृ॰ 28
3. रुइन्स ऑफ दि नालन्दा मानेस्टरीज़ एट बड़गाँव (कलकत्ता, पृ॰ 872)

है वह एक पुराने रास्ते में से गुज़रती है जिसके बाईं ओर संघाराम स्थल 1 की और दाईं ओर संघाराम स्थल 4 और 5 की बाहरी दीवारें खड़ी हैं। इस मार्ग के पूर्वी द्वार से प्रवेश करने के अनन्तर दर्शकों को पश्चिम की ओर जाना चाहिये जब तक कि वह खुला स्थान न आ जाये जिसके पश्चिम में मंदिरों की और पूर्व में संघारामों की पंक्तियाँ खड़ी हैं। मंदिरों की पंक्ति के दक्षिणी सिरे पर बना मंदिर सबसे बड़ा और प्रभावशाली वास्तु है, इसलिये उत्खात स्मारकों का वर्णन इसी से आरम्भ किया जाता है।

मुख्य मंदिर स्थल 3—यह मंदिर (फलक 1) एक विशाल और ठोस इमारत है जो खुले आँगन के मध्य में खड़ी है। इसके चारों ओर कई छोटे-छोटे उद्देशिक स्तूप हैं जिनमें से बहुतों का दो बार अथवा तीन बार निर्माण किया गया था। खुदाई से मालूम हुआ है कि आरम्भ में यह मंदिर एक बहुत छोटी इमारत थी। बाद में इसके ऊपर बारी-बारी से सात मंदिर और बनवाये गये। पहले मंदिर के टूट जाने पर उसके ध्वंस पर दूसरा और मंदिर खड़ा किया जाता था। इस क्रम से वर्तमान मंदिर-ध्वंस उत्तरोत्तर सात आरोपों का परिणाम है। नीचे के पहले तीन मंदिर ध्वंस के बहुत अंदर गहराई में दबे हुए पाये गये थे। वे सब 12 फुट भुजा के वर्ग से कम थे। इनके ऊपर जो चार बाद के मंदिरों के ध्वंस मिले वे बहुत जीर्ण दशा में थे इसलिये अंदर वाले तीन मंदिरों को फिर ढक देना आवश्यक समझा गया। ऊपर के चार आवरक मंदिर जिनकी पहचान अब भी सम्भव है पहले तीन मंदिरों की अपेक्षा बहुत बड़ी इमारतें थीं। सीढ़ियों की तीन श्रृंखलाएं जो उत्तर की दिश में बनी हैं क्रमशः पाँचवें, छठे और सातवें कालों से सम्बन्ध रखती हैं। छठे और सातवें कालों की सीढ़ियों ने पाँचवें काल की सीढ़ियों को अपने नीचे ढक लिया है। उत्तरोत्तर एक दूसरे पर बने हुए इन सात मंदिरों में से पाँचवां मंदिर बहुत रोचक और सुरक्षित दशा में है। इसके कोनों पर चार बुर्ज थे जिनमें से

तीन इस समय खोद कर उद्घाटित किये गये हैं। कोनों के बुर्जों और सीढ़ियों के पार्श्वों में ताखों की कतारें थीं जिनमें बुद्ध और बोधिसत्वों की गच की बनी सुडौल मूर्तियाँ रखी थीं। किसी-किसी उद्देशिक स्तूप के गर्भ में बौद्ध धार्मिक लेखों से अंकित ईटें मिली हैं। ये लेख ईसवी छठी सदी के हैं, इसलिये पाँचवें काल के मंदिर की भी यही तिथि निश्चित की जा सकती है। गच की मूर्तियाँ भी इसी तिथि का समर्थन करती हैं, क्योंकि ये गुप्त कलाशैली के सुन्दर उदाहरण हैं। मलबे का अंबार जिस पर पाँचवां मंदिर बना था बहुत बड़ा है। इससे सिद्ध होता है कि पहले मंदिर की नींव अवश्य ही कम से कम दो सदियां पहले रखी गयी होगी।

पहले मंदिर की तरह बाद के छः मंदिर भी भू-विन्यास में चौपहल ही बनाये गये। चारों ओर की दीवारें दोहरी बना कर उनके बीच की खाली जगह में मिट्टी और कंकर भर दिए गए जिससे वे ऊपर की भारी इमारत उठाने के योग्य दृढ़ बन गए। जैसे-जैसे ऊपर के मंदिर आयाम में बढ़ते गये, फर्श की सतह भी धीरे-धीरे ऊपर को उठती गयी। फल यह हुआ कि कई स्थानों में बहुत से उद्देशिक स्तूप भिन्न-भिन्न फर्शों की तहों और दीवारों के नीचे सारे के सारे अथवा अंशतः दब गये।

टीले के शिखर पर स्थित मंदिर के उत्तराभिमुख गर्भगृह में पहुँचने के लिये छठे काल की सीढ़ियों की शृंखला है। इस गर्भगृह में सम्भवतः एक विशाल बुद्धमूर्ति स्थापित की गयी थी। इसका समर्थन उस मूर्तिपीठ से होता है जो अभी अपने स्थान पर पड़ी है।

संघाराम स्थल 1 ए और 1 बी—मुख्य मन्दिर के पूर्व की ओर, कुछ ऊँची सतह पर, दो संघारामों के ध्वंस हैं (फलक 2)। इनके दरवाज़े पूर्व की ओर हैं और दोनों के सामने ईटों के फर्श वाला आँगन है। आँगन के फ़र्श की सतह मुख्य मंदिर के पाँचवें काल की सीढ़ियों की शृंखला के सामने वाले कंकरीले फ़र्श की तह के समतल है। दोनों

संघारामों के चारों ओर छोटी-छोटी कोठरियों की कतारें बनी थीं। कोठरियों के आगे कंकर के फर्श वाला बरामदा था और बरामदे की छत को उठाने के लिये खंभों की पंक्तियां थीं। खंभों के प्रयोग का प्रमाण वे पत्थर की चौकियां हैं जो बरामदे की मुण्डेर पर समान अन्तर पर रखी हैं। यह मुण्डेर मध्यवर्ती आँगन के चारों ओर बनी थी। देवमूर्ति वाली हर एक कोठरी संघाराम के दक्षिणी पार्श्व में बनी कोठरियों की पंक्ति के मध्य में प्रवेश द्वार के ठीक सामने होती थी। इमारत के उत्तर पूर्वी कोने में बनी कंकर के फर्श वाली सीढ़ियों की शृंखला से पता लगता है कि आरम्भ में हर एक संघाराम दो मंजिला था। संघाराम स्थल 1 बी में ईटों के फर्शवाले सेहन के उत्तर-पश्चिमी कोने में एक अष्टकोण कुआँ है। इसी तरह सेहन के दक्षिणी सिरे पर मुण्डेर के साथ बने हुए एक ऊँचे मंच के निशान अब भी दिखाई देते हैं।

दोनों संघारामों के आँगन के एक तरफ एक-एक गड्ढ़ा खोदने से पता लगा कि ऊपर के फर्श से कुछ फुट नीचे एक और प्राचीनतर् फर्श था। इससे स्पष्ट मालूम होता था कि ऊपर के दोनों संघाराम पहले वास्तुओं के ध्वंसों के ठीक ऊपर उसी स्थान पर तामीर किये गये थे।

संघाराम स्थल 1—अब संघाराम स्थल 1 का वर्णन किया जाता है। यह स्थल उन संघारामों के समूह में सब से अधिक महत्त्व का है जो स्थल 1 ए (फलक 2) के उत्तर-पूर्व में स्थित है। इस क्षेत्र में उत्तरोत्तर नौ आबादियों के स्तर हैं। हर एक स्तर के अस्तित्व के प्रमाण भिन्न-भिन्न कंकरीले फर्श और उन पर बनी दीवारों और नालियों में पाए जाते हैं।

मुख्य प्रवेश पश्चिमी दीवार के साथ बनी खंभों पर आश्रित एक बड़ी बरसाती के अन्दर था। इन खंभों की चौकियां अब भी अपने-अपने

स्थानों पर पड़ी हैं। बाद में इस बरसाती को दो दीवारें बना कर प्रकोष्ठ समेत अर्धमंडप के रूप में बदल दिया गया था। इन दीवारों के बनाने से चौड़ाई छः ही फुट रह जाने के कारण द्वार तंग हो गया। इस द्वार के दोनों पार्श्वों में आरम्भ में स्थापित गच मूर्तियाँ अग्निकांड के कारण बुरी तरह जल गयी थीं। जैसे ही खोदकर इन्हें बाहर निकाला गया इनके टुकड़े-टुकड़े हो गये। इस अग्निकांड के निशान अब भी पश्चिमी दीवारों पर स्पष्ट दिखाई देते हैं। बरसाती की उत्तरी और दक्षिणी दीवारों में बने बड़े ताखों में भी आरम्भ में गच की मूर्तियाँ रखी थीं। इनमें से एक ताख इस समय बंद किया हुआ है परन्तु दूसरे में किसी मूर्ति का नीचे का भाग अभी शेष है और इस पर भी आग से जलने के निशान साफ दिखाई देते हैं।

निम्नतल पर स्थित संघाराम की कोठरियां पश्चिमी पार्श्व में बने प्रवेश द्वार के पास तथा दक्षिणी और पूर्वी पार्श्वों के साथ-साथ बनी दिखाई देती हैं। इस संघाराम को पालवंश के तीसरे राजा देवपाल के शासन काल (ई॰ 810-50) में सुमात्रा के राजा ने बनवाया था। इसका प्रमाण वह ताम्रपट्ट लेख है जो प्रवेश द्वार के उत्तर-पश्चिमी कोने से खोदा गया था।

अन्य संघारामों की तरह इसमें भी भिक्षुओं के निवास के लिये चौड़े बरामदों वाली कई कोठरियां हैं। आरम्भ में ये कोठरियां चौकोर खुले आँगन के चारों ओर बनाई गयी थीं, परन्तु बाद में कोठरियों और आँगन के बीच एक ऊँची दीवार तामीर की गयी थी। आरम्भ में यह दो या तीन मंजिल की इमारत थी, जैसा कि उन सीढ़ियों से पता लगता है जो दक्षिण-पूर्वी कोने में बनी हैं। बहुत सी कोठरियों में खुदाई करने से ऊपर के फर्श के नीचे प्राचीनतर् कंकरीले फर्श के निशान मिले जिससे

पता लगा कि यह संघाराम किसी पुराने स्मारक के ध्वंस पर बना था। निचली कोठरी की सुन्दर ईटों की चिनाई के ऊपर बनी भद्दी इमारत उत्तर काल की है और उस समय से सम्बन्ध रखती है जब पूर्व-काल की दीवारों के ध्वंसों पर नयी दीवारों की नींव रखी गयी। अच्छी तरह देखने से पता लगता है कि बाद की दीवारें कई जगह निचली दीवारों की रेखा से बाहर को बढ़ी हुई हैं। परन्तु यह उभार सब जगह एक जैसे नहीं हैं। इस विषमता का कारण यह है कि जब बाद का संघाराम बनाया गया तो तमाम जगह, जहाँ पहले बरामदा था, पहले संघाराम की ऊपर की मंजिल के मलबे से खचाखच भरा था जो दीवार की तरह ही कठोर हो गया था। इसलिये बाद में जब नये संघाराम की नींव रखी गयी तो यह आवश्यक नहीं समझा गया कि नयी दीवारों की नींव पहली दीवारों के ध्वंसों पर ठीक बैठती है अथवा उनसे इधर-उधर कुछ घट-बढ़ जाती है, क्योंकि सब स्थान एक जैसा कठोर और दृढ़ था। इन बढ़ी हुई दीवारों को उसी दशा में सुरक्षित तथा स्थित रखने के लिये लोहगर्भित कंकरीट के सिरदल और बत्ते बढ़े हुए भागों के नीचे लगा दिये गये हैं।

नीचे के संघाराम का मुख्य देवालय पूर्वी पार्श्व के मध्य में बना है। आरम्भ में इसमें आसीन बुद्ध की महाकाय मूर्ति थी। इस की जांघों और वस्त्रों के कुछ अंश अब भी दिखाई देते हैं। जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है, सेहन और बरामदे के बीच मुण्डेर पर बनी ऊँची दीवार बाद में बनायी गयी थी। अतः श्रद्धालु उपासक बुद्धमूर्ति को आँगन से अथवा संघाराम के प्रवेश द्वार से ही देख सकता था। देवालय के सामने ऊँची दीवार के पीछे खंभे गाड़ने के लिये पत्थर की चौकियों से घिरा हुआ मंच सम्भवतः आचार्य का उच्च आसन था जहाँ बैठ कर वह आँगन में उपस्थित विद्यार्थियों को पढ़ाता था। आँगन के मध्य में स्थित चौकोर इमारत

बाद की है। सात फुट तक ऊँचे इसके निचले भाग का संस्कार आधुनिक ईंटों से किया गया है। कुछ तिरछी खड़ी सीढ़ियों की कतार से उस ऊँचाई का पता लगता है जहाँ तक सतह ऊपर को उठी थी जब चैत्य बनाया गया। मुख्य देवालय के दक्षिण-पश्चिम में एक चौपहल छोटा देवालय है। यह वास्तु बड़े देवालय से पुराना है। इसमें लगी पत्थर की शिला, जिस पर पत्र लता और उड़ते हुए बौनों की मूर्तियाँ बनी हैं, आरम्भ में किसी और मंदिर का अंग थी। इसकी तिथि गुप्तकाल हो सकती है।

नीचे और ऊपर के संघारामों की कोठरियों के फर्शों के बीच प्रायः 14 फुट का अंतर है। बाद के निर्माताओं ने उत्तर-पश्चिमी कोने में बने पुराने कुएँ तक पहुँचने के लिये मध्यवर्ती आँगन से सारा मलबा हटाकर बाद की ऊँची दीवार के साथ एक चौड़ी सीढ़ी बनवाई थी। इसी समय ऊँची दीवार के साथ डाटदार छतों वाले दो संयुक्त कमरे तामीर किये गये। इनके दरवाज़े घुड़िया शैली की मेहराब के दक्षिणाभिमुख बने हैं। इन कमरों के अंदर से ऐसी कोई वस्तु नहीं मिली जिससे इनके प्रयोजन का पता लग सकता। परन्तु इनके सामने वाले बरामदे में कई असाधारण मूर्तिखंड पाये गये थे। इनमें सूक्ष्मकण के पत्थर का बना मूर्ति-फलक विशेष महत्त्व रखता है। इस पर बुद्ध-जीवन की आठ बड़ी घटनाएं उत्कीर्ण हैं। बाद में जब ऊपर का संघाराम भी गिर गया तो आँगन की सतह उठती-उठती अंतिम काल के संघाराम की कोठरियों और बरामदे के फर्श की सतह से केवल दो फुट ही नीचे रह गयी। इस अंतिम काल में सारे आँगन में कंकर की तह बिछाई गयी। कंकर की उत्तरोत्तर तीन तहें पायी गयी थीं और आँगन के दक्षिण-पश्चिमी कोने में अब भी ये तीनों तहें साफ दिखाई देती हैं।

ऊपर की सतह पर बने हुए संघाराम की कोठरियों की दीवारों में भिक्षुओं के सोने के लिये गहरे ताख बने थे। ऐसे ताख नीचे के संघारामों

की कोठरियों में नहीं मिले। इन भिन्न-भिन्न काल के संघारामों में पानी के निकास के लिये नालियां भी थीं। इसका प्रमाण संघाराम के उत्तर-पूर्वी कोने में उत्खात नालियों के अवशेषों में मिलता है।

इस अंतिम संघाराम के उत्तरी बरामदे के पश्चिमी कोने में देवपाल के पूर्वाधिकारी धर्मपाल (ई॰ 770-810) का खंडित ताम्रपट्ट मिला था। इसके पास ही गुप्तवंश के सम्राट् समुद्रगुप्त (ई॰ 335-75) का ताम्रपट्ट पाया गया जो सम्भवत: नकली था। संघाराम के बाहर इसके पश्चिमी माथे के साथ बनी हुई कंकरीले फर्श वाली सीढ़ियों की कतार अंतिम काल के संघाराम के तल तक उठी थी। इसलिये यह सबसे बाद में बनायी गयी होगी।

संघाराम स्थल 4—संघाराम स्थल 4 संघाराम स्थल 1 के उत्तर में इसके समीप है। इसका उत्तरी आधा भाग सबसे निम्नतल बस्ती की तह तक गहरा खोदा गया। इस खुदाई में एक प्राचीनतर् संघाराम के भग्नावशेष प्रकाश में आए हैं। ऊपर का संघाराम नीचे वाले संघाराम की दूसरी मंजिल नहीं था। इसका समर्थन इस बात से होता है कि पूर्व की दिशा में खड़ी कोठरियों की पंक्ति के मध्य में बना मुख्य मन्दिर प्राचीनतर् मन्दिर के ठीक ऊपर स्थित है। इसके अतिरिक्त ऊपर की तह पर स्थित आँगन के उत्तर-पूर्वी कोने में पानी के निकास के लिये जो छतदार नाली बनायी गयी थी वह बरामदे की दीवार में से तथा ऊपर के संघाराम की एक कोठरी की पिछली दीवारों के आगे से होकर निकली है। तीसरी बात यह है कि ऊपर के संघाराम के आँगन में एक कुआँ भी बना है।

ऊपर के संघाराम से सम्बद्ध मंदिर के आगे पूरब की ओर जो चौतरा सा बना है वह शायद बरसाती को उठाने के लिए था। बरामदे की मुण्डेर

की चोटी में समानान्तर पर रखी हुई पत्थर की चौकियां उन खंभों के पीठ थे जिन पर बरामदे की पहली छत खड़ी थी।

निम्नतल पर बना हुआ संघाराम भी दो मंजिला था। इसका प्रमाण सीढ़ियों का वह मूलभाग है जिस पर उत्तरकाल में सीढ़ियों की एक और शृंखला तामीर की गयी थी। वास्तु-सम्बन्धी एक विलक्षणता जो यहाँ पायी गयी वह पुरानी सीढ़ियों के मूल में एक आसमानी रोशनदान था जिसके अब चिह्न ही शेष हैं।

नीचे के संघाराम के पूर्वी बरामदे के उत्तरी सिरे के पास 'धनुर्धारी' भाँति का कुमारगुप्त (ई॰ 413-55) का सिक्का मिला था। जो नालन्दा से प्राप्त सब से पुरानी वस्तुओं में से यह एक है। नीचे के संघाराम का विनाश अग्निकांड से हुआ था। इसके समर्थक प्रमाण जली हुई लकड़ी की चौखटों और जले हुए दीवारों के पलस्तर में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

संघाराम (संयुक्त) स्थल 5—स्थल 4 में स्थित ऊपर के संघाराम के दक्षिण-पूर्वी कोने में बनी कोठरी में से एक बड़ी सीढ़ी नीचे को उतरती है यह सीढ़ी प्राचीनतर् संघाराम (स्थल 5) के दक्षिणी बरामदे के साथ सटी हुई है। इस पुराने संघाराम के उत्तरी और दक्षिणी पार्श्वों में कुछ कोठरियां और पूर्वी पार्श्व में तमाम कोठरियां खोद कर निकाली गयी थीं और इनका जीर्णोद्धार भी किया गया था। इस संघाराम की एक विशिष्टता यह है कि इसके आँगन के चारों तरफ आगे पीछे कोठरियों की दो पंक्तियाँ हैं। आगे की पंक्ति में जो कोठरियां बनी हैं उनके अन्दर एक से दूसरी में प्रवेश करने के लिये घुड़िया-शैली की डाट के दरवाज़े बने हैं, परन्तु पीछे वाली पंक्ति की कोठरियों में दरवाज़ों के कोई निशान नहीं पाये गये। सम्भवतः आरम्भ में बने दरवाज़ों को बाद में बन्द कर दिया गया था। परन्तु इनके बन्द करने के समर्थक कोई प्रमाण या चिह्न

देखने में नहीं आये।

इस स्थल से गुप्त सिक्कों का एक मिट्टी का सांचा उपलब्ध हुआ था।

संघाराम स्थल 6—संघाराम स्थल 5 देख लेने के अनन्तर दर्शक को संघारामों की कतार के सामने खुले स्थान में लौट कर उत्तर की ओर जाना चाहिये जब तक कि संघाराम स्थल 6 न आ जाए। पास से देखने पर पता लगता है कि इस संघाराम के नीचे ऊपर बने दो आँगन थे जिनमें ईटों के फर्श थे। नीचे वाला आँगन प्राचीनतर् संघाराम का था जिसके ध्वंस पर बाद में ऊपर वाला संघाराम बनाया गया। इस संघाराम में जो असाधारण बात पायी गयी वह यह थी कि इसके ऊपर वाले आँगन में दोहरे तंदूरों के दो जोड़े थे। पता नहीं कि भिक्षु इनमें अपना भोजन बनाते थे अथवा विद्यार्थियों की क्रियासिद्ध शिक्षा के लिये इनका प्रयोग होता था। आरम्भ में इन तंदूरों में नालियां नहीं थी। इस समय जो नालियां देखने में आती हैं वे इनके संरक्षण के लिये जीर्णोद्धार के समय बनायी गयी थीं।

ऊपर वर्णित दूसरे संघारामों की तरह इसके आँगन में भी अपना स्वतंत्र कुआँ था जो ऊपर नीचे की दोनों बस्तियों के समय काम में आता रहा। दक्षिण-पश्चिम के कोने में बनी सीढ़ियों की शृंखला से पता लगता है कि यह संघाराम कम से कम दो-मंजिला था। ऊपर के आँगन में एक और नीचे के में दो मंदिर थे।

संघाराम स्थल 7—संघाराम स्थल 6 और संघाराम स्थल 7 के बीच केवल एक रास्ते का ही अन्त है। इस क्षेत्र में एक ही स्थान पर उत्तरोत्तर तीन संघारामों का निर्माण हुआ था। तीनों संघाराम आकार में एक जैसे थे और एक दूसरे पर बने थे। इन्हें ऐसी विधि से खोदा गया है कि

उत्तरोत्तर आरोपित भिन्न-भिन्न काल के तीनों संघाराम और इनके आँगन, बरामदे और कोठरियां आदि स्पष्ट दिखाई देते हैं। भिन्न-भिन्न तलों पर स्थित तीनों संघारामों के बरामदों की मुंडेरो पर पत्थर की चौपहल चौकियां बनी हैं जिन पर छत को उठाने के लिये खम्भे खड़े थे। पहले और दूसरे काल की कोठरियों की पहचान उनके दरवाज़े से होती है जो बाद में ईटों से बन्द कर दिये गये थे। ऊपर के दोनों आँगनों में कंकर का फर्श है परन्तु नीचे के आँगन में फर्श ईटों का था। इस नीचे के आँगन में एक तन्दूर और सीढ़ियों समेत पश्चिमाभिमुख एक देवालय था। क्षेत्र के दक्षिणी आधे भाग को पहले काल के संघाराम की तह तक खोदा गया परन्तु इसमें कोई कुआँ नहीं मिला। सम्भव है कि अन-खुदे उत्तरी आधे भाग में कोई कुआँ दबा पड़ा हो।

संघाराम स्थल 8—इस संघाराम के बरामदों, कोठरियों, आँगन और देवालय आदि का विन्यास वैसा ही है जैसा पूर्वोक्त संघारामों में देखा गया है। यहाँ दो काल की बस्तियों के प्रमाण पूर्व निर्दिष्ट साधारण लक्षणों के समान ही हैं। दक्षिण-पूर्वी कोने की कोठरी के एक दरवाज़े का सिरदल इस संघाराम में केवल एक ही उदाहरण था जो अपनी प्रारम्भिक ऊँचाई तक सुरक्षित दशा में खड़ा था। इसका जीर्णोद्धार कर दिया गया है क्योंकि पुराने लकड़ी के सिरदल नहीं मिले इसलिये ऊपर की इमारत को उठाने के लिये कंकरीट के तीन सिरदल लगा दिये गये हैं। इमारत के इस भाग पर बड़े छज्जे के कुछ इंच ऊपर दांती दार छोटा सजावटी छज्जा बना था। नालन्दा के ध्वंसों में दंतिया छज्जे का यही एक उदाहरण है। इस संघाराम का देवालय बड़ा तथा आकर्षक है और इसके आगे खुला आँगन भी है। इसमें दो काल की आबादियों की तहें स्पष्ट दिखाई देती हैं।

संघाराम स्थल 9—इस संघाराम के पश्चिमी बरामदे के उत्तरी सिरे पर जो खुली जगह थी उसे बाद में पर्दा दीवार से कोठरी की शक्ल में

बदल दिया गया और उसमें प्रवेश के लिये घुड़ियां-शैली की डाट का छः फुट ऊँचा एक दरवाज़ा लगाया गया। डाट बनाने के पहले इस स्थान पर ऊबड़-खाबड़ भराई की हुई थी जिसका प्रमाण खुदाई में मिला है। पत्थर की छोटी-छोटी शिलाओं से ढकी हुई पुरानी नाली आँगन के उत्तर-पूर्वी कोने से शुरु होकर पूर्वी बरामदे की सारी चौड़ाई को पार करती हुई इमारत के बाहर पूरब की ओर खुली जगह में जाकर समाप्त होती थी। बाद की नाली भी उत्तर-पूर्वी कोने से शुरु होती थी। इसका तल पहली नाली के तल से सम्बद्ध था और यह 28 फुट की लंबाई तक आँगन के बीचों-बीच कर्णरेखा के समान बढ़ी हुई थी। ऐसा मालूम होता है कि किसी कारण से जब आँगन का एक भाग मलबे से दब गया और पुरानी नाली बन्द हो गयी तो ऊपर की नाली आँगन के बीच तिरछी बनानी पड़ी। छः तन्दूर आँगन के मध्य में हैं और सातवें के अवशेष संघाराम के उत्तरी बरामदे के मध्य में पाये गये हैं। दक्षिण-पश्चिमी कोने में आसमानी रोशनदान वाली सीढ़ियां हैं जैसी संघाराम स्थल 4 में पायी गयी थीं। इन सीढ़ियों के कदमों पर जली लकड़ी की तहें मिली थीं जिनसे मालूम होता था कि आरम्भ में सीढ़ी का यह भाग लकड़ी का बना था जो बाद में अग्निकांड से भस्म हो गया।

संघाराम स्थल 10—संघाराम स्थल 10 में जो असाधारण बात देखी गयी वह यह थी कि यहाँ दरवाज़ों पर बजाय सिरदलों के कमानें बनी थीं जिन की चिनाई कीच में की गयी थी। इन कमानों के चिह्न इमारत के दक्षिण-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी कोनों में अब भी दिखाई देते हैं। इस इमारत में जो दूसरी विशेष बात देखने में आई वह यह थी कि इसकी बाहरी पूर्वी दीवार के माथे में पिछवाड़े से अन्दर आने के लिये उत्तर

और दक्षिणी किनारों पर एक-एक दरवाज़ा था जिन्हें बाद में बन्द कर दिया गया था। इसके आँगन में कोई कुआँ नहीं है।

संघाराम स्थल 11—यह स्थल खेतों के पास है। इसे जब खोदा गया तो यहाँ के स्मारक अत्यन्त टूटी-फूटी दशा में थे। इसके समस्त उत्तरी आधे भाग को तोड़-फोड़ कर जमीन के साथ मिला दिया गया था। इस संघाराम में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें पच्चीस के लगभग पत्थर के खम्भे पाये गये थे। इनमें से कई बरामदे की मुण्डेर पर चार से पाँच फुट के समान अन्तर पर अब भी खड़े हैं। कुछ समूचे खम्भों से पता लगता है कि ये खम्भे सात फुट के लगभग ऊँचे थे। इस समय ये बिना शीर्षकों के हैं। इन खम्भों तथा इमारत के दक्षिण-पश्चिमी कोने में विद्यमान कड़ियों के छेदों से बरामदे तथा कोठरियों की छतों की ऊँचाई का अनुमान लग सकता है। संघाराम के दक्षिण-पश्चिमी कोने में जो सीढ़ियां हैं उसकी दीवार में उजाले के लिये चौड़ा छेद है। इस इमारत में से कुछ टूटे-फूटे मटके मिले थे जिनके अंदर चूने की तह जमी थी और कोठरियों की दक्षिणी पंक्ति के पश्चिमी सिरे की ओर कुण्ड के आकार की एक कोठरी थी। ये दोनों उपलब्धियां विशेष महत्व रखती थीं।

संघारामों के सम्बन्ध में साधारण समालोचना—पूर्वोक्त संघाराम देख लेने के अनन्तर दर्शक को मालूम हो जाता है कि आकार व भू-विन्यास में वे सब समान थे। द्वार में से प्रवेश करने के अनन्तर एक तरफ एक गुप्त कोठरी पायी गयी है इसके अंदर जाने के लिये इसके सामने बने कोष्ठ की दीवार में नीचा और तंग विवर था। अंदर की कोठरी में सम्भवतः लोगों के द्वारा दान दिये हुए बहुमूल्य पदार्थ संग्रह किए जाते थे। हर संघाराम में खम्भों पर आश्रित एक बरामदा था जिसके

एक तरफ खुला आँगन और दूसरी तरफ कोठरियों की श्रेणियां थीं। द्वार से अंदर प्रवेश करते ही सामने वाली कोठरियों की पंक्ति के मध्य की कोठरी देवालय थी जिसमें मुर्ति रखी गयी थी। सघारामों के मध्य में स्थित होने के कारण संघाराम में दाखिल होते ही दर्शक की दृष्टि इस पर पड़ती थी। आँगन में भी प्राय: एक बड़ा मन्दिर स्थापित था। दीवारों पर पलस्तर का मोटा लेप चढ़ाते थे जिसके अंश हर इमारत पर कहीं न कहीं अब भी दिखाई देते हैं।

नालन्दा के ध्वंसों में जले हुए लकड़ी के शहतीरों, दरवाज़ों, मूर्तियों, अनाज आदि के काफी अवशेष मिले हैं जिससे पता लगता है कि यहाँ कम से कम एक बार भारी आग लगी थी। इस अग्निकांड से उस समय की सब इमारतों को थोड़ा बहुत नुकसान अवश्य हुआ होगा, और भयभीत विद्यार्थी और भिक्षु अपना सब कुछ वहीं छोड़ कर अन्यत्र भाग गये होंगे। ऐसा होने पर भी नालन्दा महाविहार के स्थान को बौद्धों ने सदा के लिये नहीं त्यागा। संकट टल जाने पर लोग फिर इस शिक्षा-केन्द्र में लौट आये।

इस तरह हर एक संघाराम कई बार उजड़ा और फिर बसा। ऊपर चर्चा की गई है कि संघाराम स्थल 1 में उत्तरोत्तर आबादियों की नौ तहें हैं, अत: इस इमारत की बनावट बहुत जटिल है। अन्य सब संघारामों में उत्तरोत्तर दो या तीन आबादियों की तहें पायी गयी हैं। साधारणत: उत्तरकाल के निर्माताओं ने संघारामों के पुराने आकार में कोई परिवर्तन नहीं किया। उन्होंने नयी इमारतों को पुराने ध्वंसों पर ही बनाया और नयी नीवों को पुरानी दीवारों और दृढ़ मलबे की तहों पर ही रखा।

संघाराम स्थल 1 क और 1 ख के बिना बाकी सब संघारामों का मुख्य द्वार पश्चिम की ओर था। नालियां इनके गन्दे पानी को पूर्व दिशा

में ले जाती थीं और ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां दक्षिण-पश्चिमी कोने में होती थीं। हर दो संघारामों के बीच पूर्व-पश्चिम के रुख एक रास्ता था जिससे ये वास्तु एक दूसरे से वियुक्त परस्पर स्वतंत्र थे।

संघारामों की पंक्ति के सामने पूर्व की ओर मन्दिरों की पंक्ति थी। दोनों के बीच में खुली जगह थी। ईटों की इमारतों के बिखरे हुए खंडों से सिद्ध होता है यह खुली जगह भी बिलकुल खाली नहीं रहने दी गयी थी। अब नीचे पंक्तिबद्ध मन्दिरों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

मंदिर स्थल 12—ऊपर (पृ॰ 18) नालन्दा के स्मारकों में सबसे विशाल मुख्य मन्दिर का वर्णन किया जा चुका है। अब इसके उत्तर में स्थित मन्दिर स्थल 12 का वर्णन किया जाता है। इस मन्दिर का वर्तमान स्वरूप भिन्न-भिन्न कालों की दो इमारतों का योग है, अर्थात् दूसरे काल का मन्दिर पहले काल के मन्दिर पर बनाया गया था। पहले मन्दिर के बाहरी शरीर पर सजावट के लिये सर्वत्र उभरवाँ ताख और कई भाँति के बगली सतून (अर्धस्तम्भ) बने हैं, यद्यपि इस समय बहुत कम ऐसे ताख हैं जिनमें देवमूर्तियाँ अभी अपने स्थानों पर शेष बची हैं। ताखों और अर्धस्तम्भों की बहुतायत से मुख्य मन्दिर बहुत आकर्षक और मनोहर दिखाई देता है। बाहर से मन्दिर का विन्यास प्रायः चौपहल है, अर्थात् लम्बाई में 170 फुट और चौड़ाई में 165 फुट है। पहले मन्दिर पर आरोपित दूसरा मन्दिर भी चौपहल है परन्तु इसका वाह्य शरीर सादा और बग़ैर ताखों और अर्धस्तम्भों की सजावट के है। चैत्य के चार कोनों में से हर एक कोने पर छोटे देवालयों की समायत के लिये चौकोन उभार है। इसके पूर्वी माथे के मध्य में एक चौड़ी सीढ़ियों की शृंखला है। बड़े मन्दिर के गर्भगृह तथा कोनों पर बने छोटे मन्दिरों की दीवारों के बाहरी माथों पर सजावटी ताख बने हैं। इनमें से बहुत से ताखों में गच की

मूर्तियाँ स्थापित हैं जैसी कि मुख्य मन्दिर की पाँचवें काल की इमारत में पायी गयी थीं। दूसरे काल के मन्दिर का गर्भगृह पूर्वाभिमुख बना है। चैत्य के दक्षिण-पूर्वी कोने के सेहन में •छोटे-बड़े कई आकार के उद्देशिक स्तूप बने हैं जैसे मुख्य मन्दिर के आँगन में पाये गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि चैत्य के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की दिशाओं में सुरक्षा के लिये एक अखंड चारदीवारी थी। पिछली शताब्दी के अंतिम चरण में ब्राडले महोदय ने इस स्थल में कुछ अधूरी सी खुदाई कराई थी (पृ० 17)

मन्दिर के उत्तर और दक्षिण में ईटों के बने दो मन्दिर हैं। इनमें से एक मन्दिर में भूमि-स्पर्श-मुद्रा में आसीन गच की महाकाय बुद्धमूर्ति के चिह्न शेष हैं। इस मुद्रा में बुद्ध भगवान् हथेली को अंदर की ओर करके अपने दाये हाथ से भूमि को छू रहे हैं।

मंदिर स्थल 13—मन्दिर स्थल 12 के उत्तर की ओर इसी पंक्ति में एक दूसरा वास्तु-मन्दिर स्थल 13-इस समय अत्यंत ध्वस्त दशा में है। इसकी बाहरी दीवार के कुछ अवशिष्ट अंशों से पता लगता है कि यह इमारत दो भिन्न-भिन्न कालों की रचना है। अत्यन्त टूटी-फूटी होने पर भी पहले काल के वास्तु की बाहरी दीवारों में कहीं-कहीं ऐसे लक्षण दिखाई देते हैं जिनसे पता लगता है कि मन्दिर स्थल 12 की दीवारों की तरह इनमें से सुन्दर ताख, अर्धस्तम्भ आदि की सजावट थी। दूसरे काल की दीवारें जहाँ कहीं भी बची हैं सादी ही दिखाई देती हैं।

चैत्य के पूर्व में एक बड़ा आँगन है। आरम्भ में इस पर कंकर का फर्श बिछा था जिस पर कई उद्देशिक स्तूप खंडित दशा में अभी भी खड़े हैं। आँगन के मध्य में एक बरसाती है जहाँ पहुँचने के लिये सीढ़ियों की कतार बनी है। चैत्य के ऊपर अब भी मन्दिर खड़ा है और

इसके अन्दर गच की महाकाय बुद्धमूर्ति के अंश अब भी शेष हैं। मन्दिर के गर्भगृह की दीवारें दो भागों में बनी थीं। बाहर की दीवार में पुराने पुस्तकर्म के चिह्न अभी विद्यमान हैं। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ में बिछा हुआ कंकर का फर्श अब प्रायः नष्ट हो चुका है।

इस स्थल की सबसे विचित्र बात मुख्य इमारत के उत्तर में ईटों की बनी धातु पिघलाने की भट्ठी है। इसके अन्दर की वर्गाकार जगह को मध्य में एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई ईटों की दो दीवारें बनाकर चार कोष्ठों में विभक्त किया है। हर एक कोष्ठ में आग जलाने और वायु के संचार के लिये दो-दो छेद थे। भट्ठी के अन्दर से जले हुए धातु के टुकड़ों और खंगर आदि के मिलने से पता लगा है कि यह भट्ठी धातु की ढालुआँ वस्तुएं बनाने के लिये प्रयोग में आती थी।

मंदिर स्थल 14–मन्दिर स्थल 13 के उत्तर में एक और मन्दिर, स्थल 14, इसी आकार और इसी नाप का है। बाहरी दीवारों से पता लगता है कि यह भिन्न-भिन्न काल की दो इमारतों का एक दूसरी पर आरोप है। बहुत स्थानों में सुन्दर उकेरी के काम वाली पुरानी दीवारों पर बाद में सादी दीवारें चिनी गयी थीं। उत्तरकाल की रचना में गर्भगृह के द्वार को ईटों की ठोस चिनाई से तंग कर दिया गया था। गर्भगृह के अन्दर गच की महाकाय बुद्ध मूर्ति की आसन-सुबद्ध जाघें और 3 फुट ऊँचा सिर अब भी शेष है।

मन्दिर की अत्यन्त रोचक बात यह है कि इसकी कुर्सी में बने ताखों में रंगीन चित्रकारी के चिह्न मिले हैं। नालन्दा में रंगीन भित्तिचित्र का केवल यही एक उदाहरण शेष है। चित्र का अवशिष्ट भाग बहुत खंडित है और इसमें केवल हिरन और शेर की आकृतियां ही दिखाई देती हैं।

मंदिर स्थल 2—आकार एवं भू-विन्यास में यह मंदिर बाकी सब मंदिरों से विलक्षण है। इसकी स्थिति संघाराम स्थल 7 के उत्तर-पूर्व में है और यहाँ पहुँचने के लिये एक तंग रास्ता है जो संघाराम स्थल 7 और 8 में से गुजरता है। इसके सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि पुस्तकर्म से सुशोभित इसके पीठ पर दो सौ ग्यारह मूर्तियों वाले दिलहे बने हैं जो बड़ी कुशलता से एक जैसे अन्तर पर परस्पर विभक्त हैं। मुख्य प्रवेशद्वार के दोनों पार्श्वों में से हर एक में बीस और पीठ के बाकी तीन पहलुओं में से हर एक पर सत्तावन दिलहे बने हैं। दिलहों के बीच उत्कीर्ण अर्धस्तम्भ घट-पल्लव अभिप्रायों से अलंकृत हैं और इनके शिखर पर मेहराब, जिनमें से कई नोंकदार हैं, बनी हैं। दिलहों में कई भाँति के दृश्य हैं, जैसे विविध भाव-भंगिमाओं में मानव आकृतियां, घरेलू जीवन के दृश्य, वाद्ययंत्रों को बजाते हुए किन्नर, अकेले-अकेले अथवा एक दूसरे के संग शिव और पार्वती, मयूर-वाहन कार्तिकेय, अग्नि, कुबेर और गजलक्ष्मी, लिखने की सामग्री लिये हुए बालक गौतम? धुनर्विद्या के दृश्य, कच्छप-जातक, पत्राकार पूँछ वाला नरमुंड पक्षी, मकर अभिप्राय, सपेरा, रेखामय तथा पत्रलता अभिप्राय, आदि। इन दिलहों के देखने से उन मृण्मय टिकड़ियों का स्मरण होता है जो पूर्वी बंगाल के राजशाही ज़िले में पहाड़पुर के विशाल मंदिर की भिन्न-भिन्न मेधियों पर पंक्तिबद्ध जड़ी हैं। दोनों में प्रदर्शित दृश्यों, उनके सजाने की विधि और कलाशैलियों में बहुत समानता पायी जाती है।

कई विद्वानों का सुझाव है कि दिलहों पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ ईसवी छठी या सातवीं सदी की हैं। परन्तु वर्तमान मंदिर जिस पर ये दिलहे बने हैं सातवीं सदी के बाद का है, इसलिये सम्भव है कि आरम्भ में ये मूर्तियाँ किसी प्राचीनतर् मंदिर में लगी थीं और बाद में सजावट के लिये इस मंदिर में लगा दी हों।

इन दिलहों की पंक्ति पर दो अथवा कहीं-कहीं तीन छज्जे बने हैं जिन पर विषम अंतर पर "चैत्य-अभिप्राय", पक्षी, नर-मस्तक आदि आकृतियां कोरी हैं। पूर्व की दिशा में बने सोपान मार्ग से ऊपर जाने पर दर्शक मंदिर के प्रदक्षिणा-पथ में पहुँच जाता है। इस पथ के समतल स्तर से मंदिर की इमारत का आरम्भ होता है। इसकी रचना में भिन्न-भिन्न दो कालों के निर्माण का समावेश है।

4. नालन्दा के आस-पास का क्षेत्र

बुद्धमूर्ति—चैत्य स्थल 14 के पूर्व में चहारदीवारी से घिरे अहाते के अंदर आसीन बुद्ध की महाकाय मूर्ति रखी है।

मारीची की मूर्ति—पत्थर की एक और मूर्ति, जो कि बौद्धों की उषादेवी मारीची की है, मंदिर स्थल 14 के पूर्व में लगभग 1000 मी की दूरी पर रखी है। बौद्ध ग्रंथों के वर्णन के अनुसार इस देवी के तीन मुखों में से एक मुख सूअर का है और इसके पादपीठ पर सात सूअरों की पंक्ति खुदी है। स्थानीय लोग इसे हिंदू देवी के रूप में पूजते हैं।

बड़गाँव में स्थापित मूर्तियाँ—उत्खात क्षेत्र के उत्तर में स्थित बड़गाँव नाम के गाँव में एक आधुनिक सूर्य मंदिर है जिसमें हिंदू और बौद्ध मूर्तियों का सुन्दर संग्रह हैं। पाँच फुट के करीब ऊँची पर्वती की एक दर्शनीय मूर्ति अपने मनोहर लक्षणों के कारण आकर्षक है। कोष्ठों में सूर्य, विष्णु, शिव-पार्वती, अवलोकितेश्वर आदि की मूर्तियाँ रखी हैं। पास ही एक बड़ा सूर्यकुण्ड है जिसके पूर्वी और उत्तरी किनारों पर बौद्ध तथा हिंदू देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इनमें कुछ मुखलिंग भी समाविष्ट हैं।

बेगमपुर के भग्नावशेष—और भी उत्तर की ओर बड़गाँव और बेगमपुर गाँवों के बीच पुरानी इमारतों के ध्वंसों के बने कुछ टीले हैं।

सम्भवतः ये टीले नालन्दा की पुरानी बस्ती की उत्तरी सीमा के प्रतीक हैं और इस बात के साक्षी हैं कि अपने उत्कर्ष काल में नालन्दा का नगर यहाँ तक फैला हुआ था। नालन्दा के विस्तृत खंडहर के चारों ओर कई ताल हैं। इनमें से कुछ तालाबों में अब भी पानी है।

जगदीशपुर में मूर्ति—नालन्दा के उत्खात भग्नावशेषों के प्रायः दो मील दक्षिण-पश्चिम में जगदीशपुर नाम का एक गाँव है। यहाँ एक महाकाय बुद्धमूर्ति है, जिसके पीछे ऊँचा शिलापट्ट लगा है। इसमें बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे वज्रासन में आसीन है। उन्हें अपने ध्यान और आसन से विचलित करने के लिये मार तथा उसकी सेना का आक्रमण एवं मार की दिव्य कन्याओं द्वारा प्रलोभन और अन्त में उसका पराजय और मानभंग आदि प्रदर्शित हैं। शिलापट्ट के ऊपर के भाग में बुद्ध के जीवन की घटनाएं, जिनमें परिनिर्वाण भी शामिल है, उत्कीर्ण हैं।

5. पुरातत्त्व-संग्रहालय

नालन्दा के पुरातत्त्व-संग्रहालय में वे प्राचीन वस्तुएं रखी हैं जो पूर्वोक्त स्थलों अथवा निकटस्थ प्राचीन राजगृह की खुदाई में पायी गयी थीं।

क. मूर्तियाँ

देवगण—संग्रहालय में सबसे अधिक कीमती संग्रह पत्थर और कांसे की बनी अधिकांश बौद्ध और कुछ हिंदू देव देवियों की मूर्तियों का है। देवताओं की मूर्तियाँ प्रायः संघारामों के स्थलों में मिली थीं जहाँ भिक्षु इनकी पूजा करते थे। सम्भवतः ये मूर्तियाँ इन संघारामों में गढ़ी भी जाती थीं मंदिरों के स्थलों में छोटे आकार के उद्देशिक स्तूप, धार्मिक लेखों और मंत्रों से अंकित चौड़ी ईटें, अथवा बौद्ध मंत्र[1] से अंकित पट्टियां पाई गयी थीं। नालन्दा की मूर्तियाँ अधिकांश पालकाल की हैं, यद्यपि कुछ

अच्छे उदाहरण गुप्त समय के भी हैं (जैसे मंदिर स्थल 3 की भित्तियों में स्थापित गच की मूर्तियाँ)। नालन्दा तांत्रिक उपासना का केन्द्र था, अतः यह स्वाभाविक ही था कि यहाँ बुद्ध और बोधिसत्वों की पूजा के अतिरिक्त तांत्रिक देव देवियों का भी विकास और पूजन होता था। उत्खात वस्तु सामग्री से इस तथ्य का पूर्णतया समर्थन होता है। नालन्दा में पाल कलाशैली के उत्कृष्ट उदाहरण मिले हैं। इस केन्द्र से इस कलाशैली की ज्योति ने अपने किरणजाल से पूर्व के देशों तथा पूर्वी द्वीप समूह को आलोकित किया। नालन्दा के भिक्षुओं द्वारा आविष्कृत बौद्ध देवगण की पूजा-पद्धति नेपाल और तिब्बत में भी पहुँची। परन्तु उत्तरी देशों के बौद्धों ने अपने देशों की परम्परागत रूढ़ियों और कल्पनाओं के अनुसार और बहुत से देवताओं की सृष्टि की और पहले देवताओं में परिवर्तन भी किये। बौद्ध धर्म के विज्ञान और कर्मकांड के केन्द्र स्थान नालन्दा में हिंदू धर्म की जो अनेक मूर्तियाँ मिलीं यह एक आश्चर्य की बात है। सम्भवतः इन मूर्तियों के यहाँ लाने और स्थापना करने में कोई आपत्ति नहीं समझी गयी थी। परन्तु स्मरण रहे कि यह वह समय था जब बौद्ध धर्म के नेता जानबूझ कर ऐसे देवताओं की रचना और स्थापना कर रहे थे जिनसे हिंदू धर्म का अपमान होता था। ऐसे देवताओं में शिव और पार्वती को पांवों तले रौंदता हुआ त्रैलोक्य विजय, गणेश को पांवों तले कुचलती हुई अपराजिकता और अपने हाथ में ब्रह्मा का छिन्न मस्तक लिये विद्युज्ज्वाला कराली जिसके वाहन इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और

---

1. यह बौद्ध मंत्र निम्न-लिखित श्लोक है–

ये धर्मा हेतु-प्रभवा हेतुं तेषां तथागतोऽ ह्यवदत्
तेषां च यो निरोध एवं-वादी महाश्रमणः।

अर्थात्–"कारण से उत्पन्न होने वाले जो धर्म (कार्य) हैं उनका निदान तथा उनके निरोध का उपाय भी तथागत ने बतलाया है। महाश्रमण का ऐसा वचन है"।

शिव जैसे हिंदू धर्म के परम पूज्य देवता थे। इसमें संदेह नहीं कि हिंदुओं और बौद्धों ने किसी अंश में एक दूसरे के देवताओं को लिया था, परन्तु यह सम्भव नहीं कि नालन्दा में उपलब्ध विष्णु, बलराम, शिव-पार्वती, गणेश आदि हिंदू धर्म की मूर्तियों को बौद्धों ने कभी अपने देवगण में समाविष्ट करके अपनी पूजापद्धति का अंग बना लिया हो।

कला—तांत्रिक उपासना पद्धति के प्रभाव से पालकाल के कलाकारों ने गुप्तकाल के कलाकारों की तुलना में अधिक विचित्र देव-मूर्तियों की कल्पना और रचना की थी। जैसे-जैसे देवगण की संख्या बढ़ती गयी वैसे ही हाथ की मुद्राओं और पांवों के आसनों की संख्या भी बढ़ती गयी। साथ ही साथ कला-विषयक सूक्ष्मताओं की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

नालन्दा की खुदाई से प्राप्त मूर्तियाँ उत्तम, मध्यम, अधम आदि कई कोटि के कलाकारों की कृतियां थीं। नालन्दा के सभी कलाकार अपनी बुद्ध मूर्तियों में गुप्तकालीन सारनाथ के बुद्ध की शांत और ध्यानमग्न मुखमुद्रा को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हुए। न केवल यही, उनमें से बहुत से तो नालन्दा के मुख्य मंदिर के ताखों में प्रतिष्ठित बोधिसत्वों की गच मूर्तियों जैसी दार्शनीय मूर्तियाँ भी दोबारा नहीं बना सके। यह ठीक है कि शिल्पी ने अधमुँदी (अर्ध-निमीलित) आँखों आदि लक्षणों से देवता के मुख पर उसकी मानसिक दशा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया कि देवता समाधिस्थ और ध्यानमग्न है। परन्तु बजाय इसके कि यह प्रयास अभीष्ट फल देता कहीं-कहीं तो यह कला की अधोगति का ही कारण बना।

नालन्दा का प्राचीन खंडहर बहुत विस्तृत है। परन्तु सारनाथ तथा दूसरे खंडहरों की अपेक्षा यहाँ पत्थर की बड़ी मूर्तियाँ बहुत कम संख्या में

मिली हैं। प्रतीत होता है कि नालन्दा के कलाकार छोटे आकार की मूर्तियाँ बनाने में अधिक रुचि रखते थे, क्योंकि इसमें उन्हें कला की सूक्ष्म बातों की ओर ध्यान देने के लिये पर्याप्त अवसर मिलता था। अतएव कला विषयक अंतः प्रेरणा और प्रवृत्ति को व्यक्त रूप देने के लिये कलाकार ने अपना अधिक समय कांसे की मूर्तियाँ बनाने में ही लगाया। स्वभावतः कांसे की विशाल मूर्तियों की कल्पना करना और उसे मूर्त रूप देना दुष्कर था[1]। नालन्दा में धातु को पिघला कर उससे ढालुआँ मूर्तियाँ आदि बनाने की कला को वैज्ञानिक ढंग से अवश्य उन्नत किया गया होगा, और सम्भव है कि शायद यह विज्ञान विश्व-विद्यालय में एक पाठ्य विषय भी रहा हो।

नालन्दा की कई कांस्य-मूर्तियाँ सर्वतो-भद्र, अर्थात् चारों ओर से कोरी हुई हैं। परन्तु साधारणतः उनकी पीठ के पीछे कांसे की एक चौपहल फट्टी मूर्ति के कंधों तक ऊँची उठी होती हैं कई मूर्तियों के चारों ओर गोल अथवा अंडाकार प्रभामण्डल है जिनमें से कोई-कोई पृथक् बना कर जोड़ा गया है। कई मूर्तियों में प्रभामण्डल के प्रयोजन को कलाकार बिलकुल भूल गया है और इसे उसने लंबोत्तरे घुड़नाल के आकार का एक सजावटी अंग सा बना दिया है जो मूर्ति के पाद पीठ से शुरू होकर उससे एक इंच के करीब ऊपर बढ़ा है। मूर्ति की पीठ एक अथवा दो पूरे खिले कमलों की बनी होती है और कभी-कभी यह सिंहासन पर स्थित होती है। किसी-किसी मूर्ति में पद्मासन के नीचे सिंहासन के प्रतीक दो सिंह बने हैं। बुद्ध के अतिरिक्त सब देव-मूर्तियाँ एक ही शैली के भारी आभूषण पहने होती हैं।

---

1. कोई-कोई कांसे की मूर्ति बड़े आकार की भी थी। ह्वेनसाँग ने नालन्दा में 80 फुट ऊँची खड़े बुद्ध की ताँबे की मूर्ति देखी थी।

बुद्ध—यह बात भली भाँति मालूम है कि सांची, भरहुत, बोधगया आदि स्थानों में उपलब्ध प्रारम्भिक बौद्ध मूर्तिकला में बुद्ध को मनुष्य के आकार में कहीं नहीं दिखाया। उसकी उपस्थिति को सब जगह किसी लक्षण या खाली सिंहासन से ही निर्दिष्ट किया गया है। बुद्ध की मूर्तियाँ सर्वप्रथम पहली सदी ईसवीं में उत्तर-पश्चिमी भारत और मथुरा में, सम्भवत: विदेशियों के कारण बनना शुरु हुई। बुद्ध को मनुष्य के रूप में दिखलाने की प्रथा जब एक बार चल पड़ी तो थोड़े ही समय में यह भारत में सब जगह फैल गयी। बौद्ध धर्म के कला केंद्रों में सर्वत्र बुद्धमूर्ति का निर्माण कलाकार का अत्यन्त प्रिय विषय बन गया। नालन्दा की मूर्तियों में बुद्ध को स्थानमुद्रा, बोधिवृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में आसीन, भद्रासन (दोनों जांघे नीचे लटका कर) आदि विधि स्थितियों में दिखलाया गया है उनके हाथ भी भूमिस्पर्श, ध्यान, वरद, अभय, व्याख्यान, तर्क आदि विविध मुद्राओं के सूचक हैं। वह प्राय: पद्मासन पर जिसे कभी-कभी सिंहों ने उठाया होता है, विराजमान रहते हैं, जैसे मूर्ति संख्या 9-171 में है। सिर के बाल प्राय: घुंघराले और चोटी पर उष्णीष, जो महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों में से एक है, होता है। परन्तु मूर्ति संख्या 1-456 में बुद्ध के सिर पर मुकुट है। एक और मूर्ति (संख्या 1-152) में बुद्ध के सिर पर शिव की तरह जटाभार है जिसमें से कुछ लटें निकल कर कंधों पर गिर रही हैं। बुद्ध प्राय: अकेले ही प्रदर्शित होते हैं, परन्तु कभी-कभी उनके साथ परिचारक भी होते हैं जैसा कि मूर्तिफलक संख्या 1-451 और 1-900 की मूर्तियों में देखा गया है। ऐसे भी मूर्तिफलक मिले हैं जिन पर बुद्ध की जीवन घटनाओं के दृश्य बने हैं। मूर्ति-फलक संख्या 11-110 पर उनका जन्म दिखाया है। इसमें उनकी माता माया एक वृक्ष के नीचे खड़ी हैं और उनके दक्षिण की ओर पुरुषलिंग एक देवता नवजात शिशु को ले रहे हैं। संख्या 1 ए-97 के

मूर्तिपट्ट पर उकेरी का काम बहुत सूक्ष्मता से किया गया है। इसके मध्य में भूमिस्पर्श-मुद्रा में आसीन बुद्ध, पीठ पर मार के प्रलोभन का दृश्य और आस-पास की खाली जगह में सात और दृश्य बने हैं। संख्या 1-457 मूर्तिपट्ट पर बुद्ध के द्वारा उद्दाम मस्त हाथी के दमन का विषय उत्कीर्ण है और संख्या 3-272 की मूर्ति में मंच पर लेटे बुद्ध की मृत्यु का दृश्य है। इसके नीचे दो शोकातुर मानव आकृतियां और ऊपर के भाग में एक स्तूप तथा अदृश्य हाथों द्वारा बजाये जाते हुए वाद्य-यंत्र बने हैं।

संग्रहालय में प्रदर्शित उस महाकाय बुद्धमूर्ति का उल्लेख करना आवश्यक है जो मंदिर स्थल 14 के समीप पायी गयी है। इसमें बुद्ध धर्मचक्र-मुद्रा में आसीन हैं। वसु-मित्र, मैत्रेयनाथ, शारिपुत्र और मौद्गलायन परिचारक के रूप में उनके पास दिखलाये गये हैं।

विशेष रूप से उल्लेखनीय बुद्ध की दो मूर्तियाँ हैं—संख्या 1-532 और 9-150, जो नालन्दा की कांस्य-मूर्तियों में सर्वोत्तम हैं। इनमें बुद्ध गोल पद्माकार पीठ पर खड़े हैं। इनकी प्रसन्न तथा शान्त मुख मुद्रा और वस्त्रों का विन्यास प्रशंसनीय एवं आकर्षक है (फलक 3 क)।

बोधिसत्व—दिव्य बोधिसत्वों में पद्मपाणि की मूर्तियाँ सब से अधिक मिली हैं। इनमें कई मूर्तियों के सिरों पर ध्यानिबुद्ध अमिताभ की आकृति पायी जाती है और कई में नहीं। मूर्ति संख्या 1-424 में पद्मपाणि बोधिसत्व ललितासन में बैठे हैं। इनका दायाँ हाथ वरदमुद्रा में और बायाँ कमलनाल धारण किये है। मूर्ति संख्या 1-631 इन्हीं बोधिसत्व का रूपान्तर हो सकती है। इसमें देवता महाराज लीलासन में बैठे हैं। इनका दाँया हाथ वितर्क-मुद्रा में और बायाँ कमल थामे हुए है। पद्मपाणि की दो सुन्दर कांसे की मूर्तियाँ भी हैं जिन पर सोने का पानी चढ़ा है। इनमें से एक का संख्यांक 1-961 और दूसरी का 8-7 हैं पहली संख्या की

मूर्ति में देवता ने अपना दायाँ हाथ अभयमुद्रा में उठाया है (फलक 6 ख), दूसरी मूर्ति के सिर में ध्यानिबुद्ध वरद-मुद्रा में स्थित हैं[1]। इसी बोधिसत्व की साधारण लक्षणों वाली तीन बड़े आकार की पत्थर की मूर्तियाँ हैं। इन के संख्यांक क्रमशः 3-54, 3-63 और 8-15 हैं। पहली मूर्ति में प्रदर्शित देवता ललितासन में आसीन है। इसके पार्श्व में एक बौना मनुष्य, जिसके दाएँ हाथ में खड्ग और बाएँ हाथ में पाश है, खड़ा है (फलक 6 क)। 8-15 संख्यांक मूर्ति की विशिष्टता यह है कि इसमें उकेरी का काम बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है।

संख्यांक 12-87 वाली अवलोकितेश्वर की चतुर्भुज बड़ी मूर्ति के दो दाएँ हाथों में से एक अक्षमाला धारण किये और दूसरा वरद मुद्रा में है। बाएँ हाथों में से एक में कमलनाल और दूसरे में अमृतघट है। बोधिसत्व के दोनों पार्श्वों में इसकी शक्तियाँ, एक तरफ भृकुटी और दूसरी ओर तारा, हैं। पीठ के दाएँ आधे भाग में प्राणों की भिक्षा चाहने वाला दबका हुआ सूचीमुख प्राणी है। पीठ पर घुटने टेक कर बैठा हुआ एक उपासक भी है (फलक 4)। संख्यांक 1 ए-83 की कांस्यमूर्ति छः भुजाओं वाले अवलोकितेश्वर की है। इसके दाएँ हाथों में क्रमशः वरद, अभय और अक्षमाला और बाएँ हाथों में पद्म, कलश और पुस्तक (दण्ड ?) हैं। इसके ललाट में ध्यानिबुद्ध अमिताभ की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

संख्यांक 45-3847 वाली मूर्ति खसर्पण-लोकेश्वर की है जो स्थानीय मदरसे के अहाते में पायी गयी थी। वह स्थान मुद्रा में है। उनके दाएँ पार्श्व में तारा और सुधनकुमार और बाएँ पार्श्व में हयग्रीव और भृकुटी

---

1. पद्मपाणि के सिर में वरद मुद्रा में ध्यानिबुद्ध को दिखलाना शास्त्र-विरुद्ध है। यह मुद्रा रत्नसम्भव की है। अतः पद्मपाणि के सिर में अमिताभ को ध्यानमुद्रा में दिखाना चाहिये था।

हैं (फलक 5)। ऊँचे कद के बोधिसत्व (संख्यांक 51-3931) जो अपने बाएँ हाथ में कमलनाल थामे है और जिसके पार्श्वों में स्त्री-मूर्तियाँ हैं, अपने ललाट में ध्यानिबुद्ध वैरोचन की मूर्ति धारण किये हुए हैं। सम्भवतः यह बोधिसत्व सामन्तभद्र हैं।

संख्यांक 1ए-10 प्रत्यालीढ़ मुद्रा में वज्रपाणि की पाषाणमयी मूर्ति है। यह अपने बाएँ हाथों में संयुक्त घंटा-और-वज्र तथा ऊपर उठाए हुए दाएँ हाथ में वज्र धारण किये हुए है। देवता की माला, पादपीठ और उष्णीष सब सर्पमय हैं। एक असाधारण उदाहरण संख्यांक 9-46 वाली मूर्ति है। इसमें देवता पद्मासन में बैठे है। इनके तीन सिर और छः भुजाएं हैं। छाती से लगी दो भुजाओं में वह वज्र धारण कर रहे हैं और बाकी भुजाओं में यथाक्रम अक्षमाला, बाण, धनुष और एक अन्य वस्तु जो स्पष्ट नहीं है। एक स्त्री, जो उनकी शक्ति है, उनके पास बैठी है। इस मूर्ति की पीठ पर वैरोचन शब्द अंकित है। संख्यांक 9-157 की मूर्ति के शरीर पर चढ़ा हुआ सोने का पानी बिलकुल अच्छी दशा में है, अतः स्वभावतः, दर्शक की दृष्टि इस पर आकर ठहरती है। यह एक चतुर्मुख देवता (वज्र सत्व ?) की मूर्ति है जो जाघें एक दूसरी पर रख कर सिंहासन पर बैठे हैं। दोनों हाथों से छाती के साथ वज्र थामें हुए हैं। इनके सिर पर स्तूप के आकार का ऊँचा मुकुट एक विशेष लक्षण है।

मंजुश्री की जो अनेक मूर्तियाँ मिलीं उनमें संख्यांक 9-112 और 1-620 वाली उल्लेखनीय हैं। पहली मूर्ति अरपचन नाम के देवता का एक विशेष रूप है जो पद्मासन में बैठे हैं। इन्होंने अपने बाएँ हाथ में छाती के साथ एक पुस्तक थामी है और दाएँ हाथ में खड्ग को ताने हुए हैं। पीठ के चारों कोनों में एक-एक लाल पत्थर है। दूसरी मूर्ति में देवता ललितासन में बैठे हैं। उनके बाएँ हाथ में कमलनाल और दाएँ में खड्ग

है। दोनों मूर्तियों में देवताओं ने एक वस्त्र कमर में लपेट कर घुटने पर बाँधा है। मूर्ति संख्याँक 1ए-11 में मंजुश्री का रूपान्तर मंजुवर पद्मासन में बैठे हैं। उनके हाथ धर्मचक्र-मुद्रा में हैं और उनके दाईं तरफ पद्म के ऊपर पुस्तक रखी है। 11-45 संख्या की मूर्ति में भी शेर पर आसीन यही देवता हैं। इनके बाएँ हाथ में कमलनाल है और दायाँ हाथ मुड़े हुए दाएँ घुटने पर रखा है। 4-103 संख्या की मूर्ति में प्रदर्शित देवता बहुत संदिग्ध रूप के हैं उसका शरीर स्थूल और उसके दाएँ हाथ में नींबू और बाएँ में पुस्तक है[1]। इनकी पीठ पर अंकित लेख से पता लगता है कि इसकी स्थापना पालवंश के राजा देवपाल के शासन काल में हुई थी।

असाधारण शैली के बोधिसत्वों में निम्न-लिखित वर्णनीय है—संख्यांक 1-629 की मूर्ति में एक देवता हाथ में साँगल थामे पद्मासन में बैठे हैं। 1-973 संख्या की मूर्ति में एक देवता ललितासन में आसीन है। इनका दायाँ हाथ वरद मुद्रा में और बायाँ ध्वज पकड़े हुए है।

जम्भल—नालन्दा में बौद्धों के धनकुबेर जम्भल की बहुत मूर्तियाँ मिली हैं। संख्यांक 1-470 में वह महाराज लीलासन में बैठे हैं। उनके एक हाथ में फल और दूसरे में थैली है। इस पर अंकित लेख से पता लगता है कि यह मूर्ति यति केक का दान थी। संख्या 1-205 की मूर्ति में जम्भल का चतुर्भुज रूप ललितासन में आसीन दिखलाया है। इनके दाएँ हाथों में पात्र और खड्ग तथा बाएँ हाथों में क्रमशः फूल और नेवला हैं। दायाँ पांव औंधे रखे हुए कलशों पर धरा है। मूर्ति के पीछे इसकी पीठ पर 'ज' और 'हम्' अक्षर अंकित हैं। संख्या 1-641 की मूर्ति पर

---

1. ई० जे० बर्नेट केम्पर्स के विचार में यह मूर्ति कुमार की है।
"दि ब्रांज़ज़ ऑफ नालन्दा एंड हिंदू-जावानीज़ आर्ट" (लाइडन, 1933), पृष्ठ 31।

बने हुए दृश्य के मध्य में गोल पद्म-सिंहासन पर जम्भल[1] विराजमान है और उसके चारों ओर इसी भाँति के आठ और जम्भल अपने-अपने आसनों पर बैठे हैं।

अन्य देवता—अन्य पुरुषलिंग देवताओं की मूर्तियों में 1-224 संख्या की मूर्ति उल्लेखनीय है। यह बौद्ध देवता त्रैलोक्यविजय है जो औंधे मुँह गिरे हुए शिव और पार्वती हिन्दू देवताओं को अपने पाओं तले रौंद रहा है। इसके हाथ वज्र हुंकार मुद्रा में बंधे हैं और चेहरे से क्रोध बरस रहा है। इसकी पीठ पर खुदे लेख का विषय निम्नलिखित है :

आकाश-लक्षणं सर्व्वं आकाशं चाप्यलक्षणम् [।★]
आकाश-समतायोगात् सर्व्वाग्र-समता स्फुटा:[2] [।।★]
उदयभद्रस्य।

त्रैलोक्यविजय की एक मूर्ति और भी है। इसका केवल नीचे का भाग ही बचा है। यह मूर्ति संघाराम स्थल 1 की खुदाई में मिली थी।

यमान्तक नाम के एक और तांत्रिक देवता की मूर्ति संख्या 1ए-113 है। इसके छः सिर और छः ही भुजाएं हैं। अपने दाएँ हाथों में यह यथाक्रम वज्र, खड्ग, और मुसल और बाएँ हाथों में पाश, नरमुंड और रक्तपात्र धारण कर रहा है। इसके गले में नरमुंड-माला है और ललाट पर ध्यानिबुद्ध अक्षोभ्य की मूर्ति है।

---

1. ढाका संग्रहालय की वज्रतारा से इसकी तुलना कीजिये, जिसमें हर एक कमल दल पर वैसी ही सहचर देवी की मूर्ति बनी है। ये सहचर देवियां कमल-मध्य-स्थित प्रधान देवता की आनुषंगिक मूर्तियाँ हैं। एन॰ के॰ भट्टाचार्य, आइकनोग्राफी ऑफ बुद्धिस्ट एंड ब्राह्म निकल इमेजज् इन दि ढाका म्यूज़ियम (ढाका, 1929) पृ॰ 49

2. इस श्लोक का पूर्वार्ध कल्याणगर्भ-रचित हेरुक के साधन में मिलता है। साधनमाला, वी. भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित (बड़ोदा, 1928), 2, पृ॰ 470

संख्यांक 43-3843 वाली एक सुंदर मूर्ति सम्भवतः नागार्जुन की हैं यह देवता नागों के फणाटोप की छाया में बैठे हैं और अपने हाथों में कलश और अक्षमाला लिए हुए हैं (फलक 8 क)। आरम्भ में यह मूर्ति मुख्य मंदिर के दक्षिण-पूर्व में एक देवालय में स्थापित की गयी थी। इस पर खुदे लेख में दरज है कि यह मूर्ति भट्टमाणिक्य नाम के किसी व्यक्ति का दान थी।

तारा—बौद्धों की सब से अधिक पूज्य इष्ट देवी तारा थी। यह देवी अवलोकितेश्वर की शक्ति और संसार के भयों से बचाने वाली थी। अतः यह स्वभाविक ही था कि अत्यन्त लोकप्रिय होने के कारण इनकी बहुसंख्य मूर्तियाँ मिली जो संख्या में बुद्ध की मूर्तियों से कम हैं। चाहे यह खड़ी हो या आसीन, इन का बायाँ हाथ कमल की नाल पकड़े और दायाँ वरद-मुद्रा में होता है। 1-1051 संख्या की मूर्ति में तारा ऊँचे पद्म-सिंहासन पर विराज रही हैं। इनका दायाँ हाथ वितर्क-मुद्रा में और बायाँ वरद-मुद्रा में है। पट्टी से बंधे लंबे केश पीठ पर लटक रहे हैं। एक और मूर्ति, संख्यांक 1ए-304, में देवी ललितासन में सिंहासन पर बैठी हैं इनकी पीठ पर खुदे लेख की शब्द रचना इस प्रकार है—"ओं तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा। ओम् पद्मवति। ओं कुरुकुल्ले स्वाहा। ये धर्मा (अपूर्ण)।" 1-743 संख्या की मूर्ति एक सुन्दर बहुत छोटे आकार की कृति है। इस पर कज्जलका नाम की किसी उपासिका का नाम अंकित है।

प्रज्ञापारमिता—प्रज्ञापारमिता बौद्धों की विद्यादेवी और बौद्ध धर्मशास्त्र की साक्षात् मूर्त देवी है। इनकी एक मूर्ति 1ए-82 ए संख्या की है। इसमें देवी पद्म-सिंहासन पर आसन जमाकर बैठी हैं। उनके हाथ धर्मचक्र-मुद्रा में हैं और उनके दोनों पार्श्वों में कमल-पर-निहित

एक-एक पुस्तक है। दो और कांस्य मूर्तियाँ-संख्या 1-370 और 4-115- इस देवी के असाधारण रूपान्तर हैं[1]। इन दोनों मूर्तियों में देवी पद्मासन में बैठी हैं। उसके दो मुख्य हाथ धर्मचक्र-मुद्रा में न्यस्त हैं। पहली मूर्ति के दस अतिरिक्त हाथ हैं जिनमें वह कलश, पाश, शङ्ख, कलश, कमल-पर-पुस्तक और एक संदिग्ध वस्तु तथा दाएँ हाथों में फल, शंख, खड्ग, वज्र, अक्षमाला, वरद मुद्रा और दो अन्य संदिग्ध वस्तुएं धारण कर रही हैं। सिंहासन जिस पर देवी विराजमान हो रहीं हैं दो मनुष्यों और एक खंभे पर आश्रित है। मनुष्यों के सिरों पर नागों के फणाटोप[2] हैं। मूर्ति की पादपीठ पर मछली, कछुआ और मकर बने हैं जो सम्भवत: इस बात के सूचक हैं कि यह देवी समुद्र से प्रकट हुई थी (फलक 7)।

मारीचि—1ए-65 और 1ए-122 संख्या वाली मूर्तियों में मारीचि देवी को उसके मारीचीपिचुवा साधारण रूप में दिखलाया गया है। ध्यान के अनुसार दोनों मूर्तियों में त्रिमुख देवी का एक मुख सूअर का है। पहली मूर्ति में इनकी भुजाएँ आठ हैं। हाथों के पहले जोड़े में सूई और धागा, दूसरे में अंकुश और पाश, तीसरे में धनुष और बाण और चौथे में वज्र और अशोक पुष्प धारण कर रहीं हैं। उनके रथ में सूअर जुते हैं। दूसरी मूर्ति में मारीचि की छ: भुजाएँ हैं और रथ में घोड़े हैं।

जम्भल की शक्ति—आरम्भ में हारीती सम्भवत: जनशक्ति की देवी थी जिसे बौद्धों ने ईसवी सन् के शुरू में अपने देवगण में समाविष्ट

---

1. यह सुझाव कैम्पर्स का है। वही, पृ॰ 43

2. यह फणाटोप शायद इस बात का प्रतीक है कि नागार्जुन ने प्रज्ञापारमिता की पुस्तक नागलोक से प्राप्त की थी।

करके इसे जम्भल की शक्ति का पद दे दिया। सातवीं सदी ईसवी का चीनी यात्री आईत्सिंग लिखता है कि "भारतीय संघारामों में हारीती की मूर्ति या तो ड्योढ़ी में अथवा भोजनशाला के एक कोने में रखी रहती थी। एक बच्चा उन्होंने उठाया होता है और तीन या पाँच बच्चे उनके घुटनों के आस पास खड़े होते हैं। प्रतिदिन मूर्ति के आगे खाद्य पदार्थों की भारी भेंट चढ़ाई जाती है"[1]। नालन्दा से प्राप्त हारीती की अनेक मूर्तियों में निम्नलिखित का वर्णन हैं—संख्यांक 1-372, जिसमें देवी बाएँ घुटने पर बच्चा उठाये और दाएँ हाथ में एक फल लिये (जम्भल का प्रतीक) ललितासन में बैठी हैं इनकी पीठ पर अंकित लेख में लिखा है कि यह मूर्ति देवपाल के शासनकाल में स्थापित की गई थी। संख्या 1-459 की मूर्ति भी इसी देवी की है। इनका दायाँ हाथ वरद-मुद्रा में और बाएँ हाथ में एक दंड है जिसके शिखर पर पत्रलता से परिपूर्ण कलश है। मूर्ति की चौकी पर औंधे मुँह बने हुए पाँच कलश, जो जम्भल के प्रतीक हैं, निस्सन्देह इस बात का समर्थन करते हैं कि यह जम्भल की शक्ति है।

संख्यांक 1-1052 वाली मूर्ति में प्रदर्शित चतुर्भुज वसुधारा भी हारीती की श्रेणी की ही देवी हैं इनके बाएँ हाथों में क्रमशः कमलनाल और धान्य-मंजरी से युक्त मुख वाले कलश हैं। नीचे का दायाँ हाथ वरद-मुद्रा में है और पीठ पर बोधिपालित दाता का नाम अंकित है।

सरस्वती—सरस्वती देवी बौद्धों और हिंदुओं में एक समान पूजी जाती थी। संख्यांक 1ए-95 इस देवी की एक सुन्दर मूर्ति है। इस में यह ललितासन में विराजमान अपने हाथों में दाएँ घुटने पर रखी हुई वीणा को पकड़े हुए है। इनके दोनों पार्श्वों में एक-एक परिचारक है जो वाद्य यंत्र बजा रहे हैं।

---

1. तककुसु, वही, पृ॰ 37

अपराजिता—नालन्दा से प्राप्त अन्य देवियों की मूर्तियों में अपराजिता, संख्यांक 1ए-64, बौद्धधर्म के अंतिम दिनों की मनोरंजक कृति है। अपने पांवों तले यह गणेश को कुचल रही है और इंद्र परिचारक के रूप में छत्र धारण किये इनके पास खड़े हैं।

अन्य देवियाँ—नालन्दा से कुछ ऐसी देवियों की मूर्तियाँ मिली हैं जिनकी पहचान करना कठिन है। संख्या 1ए-21 एक चार भुजाओं वाली देवी है। यह पद्मासन में बैठी हैं। इनके एक दाएँ हाथ में अक्षमाला और दूसरा वरद-मुद्रा में है। बाएँ हाथों में से एक में कमल-पर-पुस्तक और दूसरे में कोई संदिग्ध वस्तु है[1]।

संख्यांक 1ए-305 वाली मूर्ति एक चतुर्भुज देवी है इसके पीठ के बाएँ सिरे पर मोर (?) है। देवी के प्रतीक लक्षण नष्ट हो गये हैं, इसलिये इनकी पहचान करना कठिन है[2]। ऐसी ही संदिग्ध पहचान की एक और मूर्ति संख्या 9-201 है। यह देवी पद्म-सिंहासन पर ललितासन में बैठी हैं। अपने दाएँ हाथों में खड्ग और पुल तथा बाएँ हाथों में परशु और पाश धारण किये हुए हैं। पाँच सिरों वाले नाग का फणाटोप इनके सिर की रक्षा कर रहा है (फलक 8 ख)।

हिन्दु धर्म के देवता—अब हिंदू धर्म की मुख्य देवमूर्तियों का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है—संख्यांक 1-887 वाली लाल रंग से पुती

---

1. कैम्पर्स का सुणव है कि यह देवी चुन्दा है, वही, पृ॰ 43। यद्यपि उसके साथ पूर्णरूप से इसकी समानता नहीं मिलती। इसके विपरीत बौद्धग्रंथों में दिये हुए धनद-तारा के लक्षणों के साथ इसकी बहुत समानता है।

2. मयूर वाहन से मालूम होता है कि यह देवी हिंदू देवता कार्तिकेय की शक्ति कुमारी है। परन्तु इसकी पीठ पर अंकित बौद्ध मंत्र से यह सम्भावना दूर हो जाती है।

मूर्ति शंख, चक्र, गदा, पद्म लक्षणों सहित चतुर्भुज विष्णु की है देवता के गले में लंबी वनमाला है पादपीठ के दाएँ सिरे पर घुटने टेक कर एक उपासिका बैठी है (फलक 3 ख)। संख्या 1-442 वाली मूर्ति बलराम की है। यह भी चतुर्भुज है और इनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और हल हैं। गले में वनमाला और सिर पर सात सिरों वाले नाग का फणाटोप हैं पीठ पर अंकित लेख से पता लगता है कि मूर्ति देवपाल के शासनकाल में स्थापित की गई थी।

संख्यांक 4-63 और 46-3856 शिव-पार्वती की पत्थर की मूर्तियाँ हैं। दोनों देवताओं के अपने-अपने वाहन और लक्षण भी विद्यमान हैं और दोनों परस्पर प्रेम में आसक्त हैं। 46-3856 संख्या की मूर्ति एक स्थानीय पाठशाला के अहाते में मिली थी। संख्यांक 1-772 वाली मूर्ति सिंहवाहिनी चतुर्भुज दुर्गा की हैं ऊपर खाली जगह में शिवलिंग बना हैं संख्या 1-594 महिष-मर्दिनी दुर्गा की मूर्ति कला की दृष्टि से एक निकृष्ट कृति है। गौरी अथवा दुर्गा का एक मनोरंजक रूपान्तर मूर्ति संख्या 1ए-100 हैं इसके ऊपर वाले दाएँ हाथ में अक्षमाला, बाएँ हाथ में वृक्ष की टहनी जिस पर चक्र बना है, और नीचे के बाएँ हाथ में कमण्डल है, परन्तु दायाँ हाथ टूटा हुआ है। शेर तथा भैंसे के कंधों पर आश्रित पादपीठ पर मकर बना है[1]।

हिंदू धर्म की अन्य मूर्तियों में सूर्य (संख्या 1-336) रेवन्त, (संख्या 1ए-123), और गणेश (संख्या 3-125) उल्लेखनीय हैं। एक छोटी

1. साधारणतः यह मूर्ति गौरी या दुर्गा की समझी जाती है। देखिये जे. एन. बैनर्जी, जर्नल ऑफ दि ग्रेटर इंडिया सोसायटी, 4, (1937), पृ॰ 137। नालन्दा में ऐसी और भी मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें से एक, संख्या 11-70, छोटे आकार की काँसे की हैं इसमें देवी ऊपर वाले दाएँ हाथ में लिंग धारण कर रही हैं, नीचे का दायाँ हाथ वरद-मुद्रा में, ऊपर के बाएँ हाथ में दंड और नीचे के में फल हैं पशु वैसे ही हैं जैसे पत्थर की मूर्ति में।

कांसे की मूर्ति (संख्या 1ए-158) या तो मगर पर सवार गंगा है अथवा हाथी पर सवार इंद्राणी।

(ख) प्राचीन लेख

ताम्रपट्ट—संघाराम स्थल 1 की खुदाई में तीन लेखांकित ताम्रपट्ट प्राप्त हुए थे। इनमें एक समुद्रगुप्त (ई॰ 335-75) का, दूसरा धर्मपाल (ई॰ 770-810) का और तीसरा देवपाल (ई॰ 810-50) का हैं इनमें से पहला ताम्रपट्ट सम्राट् के शासनकाल के पाँचवें वर्ष में माघ महीने के दूसरे दिन आनन्दपुर स्थान से जारी किया गया था। लेख के अन्त में राजा चंद्रगुप्त के नाम का उल्लेख है। इस ताम्रपट्ट के विषय में संदेह है कि शायद यह असली नहीं है[1]। धर्मपाल के ताम्रपट्ट में नगर भुक्ति (पटना डिवियन) के अन्तर्गत गया के विषय (ज़िले) में एक गाँव के दान का उल्लेख है[2]। इनमें देवपाल का ताम्रपट्ट सबसे अधिक महत्त्व का है। इसका संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया जा चुका है (पृ॰ 12)। यह ताम्रपट्ट इस समय इंडियन म्यूज़ियम कलकत्ता में सुरक्षित है।

शिलालेख—निम्न-निर्दिष्ट दो शिलालेख इस समय नालन्दा के संग्रहालय में रखे हैं। दोनों बहुत महत्त्व के हैं।

(1) यशोवर्मदेव के समय का शिलालेख[3] जिसमें कई दानों की चर्चा है। इनमें से एक वह स्थायी दान है जो यशोवर्मदेव के राजमंत्री के पुत्र मानाद ने नालन्दा में राजा बालादित्य के द्वारा बनवाये मंदिर को दिया

1. एपिग्राफिया इंडिका, 25 (1939-40), पृ॰ 50
2. एपिग्राफिया इंडिका, 23 (1935-36), पृ॰ 290
3. एपिग्राफिया इंडिका, 20 (1929-30), पृ॰ 37
इसमें किये हुए संशोधन 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टली' 7 (1931), पृ॰ 669 और 7 (1932), पृ॰ 37, तथा 'माडर्न रिव्यू' सितम्बर, 1931, में दिये हैं।

था। यह यशोवर्मदेव निस्सन्देह आठवीं सदी के पहले चरण में शासन करने वाला कन्नौज का प्रसिद्ध राजा था। इस शिलालेख में नालन्दा की समकालीन दशा का जो वर्णन किया है वह बहुत रोचक है। इस वर्णन के कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

"धर्मशास्त्रों के पारंगत एवं शिल्पकलाओं में प्रवीण अपने विद्वानों के कारण सुविख्यात नालन्दा मानो बड़े-बड़े सम्राटों के समस्त नगरों की अवहेलना कर रहा था।"

"गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं वाले नालन्दा के संघारामों की श्रेणियों को विधाता ने मानो भूमंडल की दिव्य माला के रूप में रचा था। ये संघाराम जहाँ विद्या के भंडार संघ के भिक्षु आनन्द से निवास करते हैं; जहाँ मणियों की ज्योति से देदीलप्यमान प्रासाद और मंदिर विद्याधरों से सेवित सुमेरु की शोभा की स्पर्धा करते हैं।"

"यहाँ राजा बालादित्य ने मानो कैलास का तिरस्कार करने के लिये शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध भगवान् का विशाल तथा अलौकिक सौध प्रासाद बनवाया।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रासाद मानो भूमंडल के चारों ओर घूमा था। अपने इस पर्यटन में इसने चंद्रमा का तिरस्कार किया, हिमालय के पर्वत शृंगों के सौंदर्य को नीचा दिखाया, आकाश-गंगा की धवलिमा को लज्जित किया और अपने निंदकों को सदा के लिये अवाक् बना दिया। अनन्तर यह जानकर कि ऐसे संसार में घूमना निरर्थक है जहाँ इसको परास्त करने के लिये कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था, यह प्रासाद अपने दिग्विजय का कीर्ति स्तम्भ रूप यहाँ नालन्दा में आकर सदा के लिये स्थित हो गया।"

(2) विपुलश्रीमित्र का शिलालेख[1]—इसमें तापस विपुलश्रीमित्र के कामों का वर्णन है। इसने अपने निवास स्थान सोमपुर में प्रांगण और

सरोवर से शोभित तारादेवी का मंदिर बनवाया और एक स्थानीय संघाराम का जीर्णोद्धार कराया[2]। नालन्दा में उसने एक संघाराम का निर्माण कराया, जो भूमंडल का अलंकरण और इंद्र के प्रासाद से भी अधिक सुन्दर था। इस संघाराम को उसने अपने सम्प्रदाय के साधुओं के निवास के लिये दे दिया। यह लेख संघाराम स्थल 7 की सब से अंतिम आबादी के स्तर से मिला था और जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, इस संघाराम में भिन्न-भिन्न काल की तीन आबादियों के स्तर मिले थे। अक्षरों के आकार से पता लगता है कि यह लेख ई॰ बारहवीं सदी के पूर्वार्ध में लिखा गया था और इसलिये सब से अंतिम तीसरे स्तर का संघाराम भी इसी काल का है।

इन शिलालेखों के अतिरिक्त पत्थर और कांसे की मूर्तियों पर बौद्ध मंत्र अथवा दाताओं के नाम प्राय: उपलब्ध होते हैं। ऐसे महत्वपूर्ण लेखों का उल्लेख मूर्तियों के वर्णन-प्रसंग में ऊपर किया जा चुका है।

ईटों पर खुदे लेख—ईटों पर खुदे बहुत से लेख जो अधिकांश खंडित हैं, मुख्य मंदिर से सम्बन्धित छोटे उद्देशिक स्तूपों के अंदर पाये गये थे। ये लेख या तो "ये धर्मा" आदि बौद्ध मंत्र हैं, अथवा अधिक विस्तृत निदान सूत्र' या 'निरोध' भाग के सहित अथवा उसके बिना 'प्रतीत्य समुत्पाद-सूत्र।'[1] यह सूत्र संस्कृत और पाली के बौद्ध ग्रन्थों में

1. एपिग्राफिया इंडिका, 21 (1931-32), पृ॰ 97

2. पूर्वी बंगाल के राजाशाही ज़िले में स्थित पहाड़पुर के ध्वंसों की सोमपुर से एकात्मता सिद्ध की गयी है। पहाड़पुर में संघाराम और तारा के मंदिर समेत एक विशाल बौद्ध मंदिर के ध्वंस खोदे गये हैं। ऐसा मालूम होता है कि तारादेवी का मंदिर विपुलश्रीमित्र ने बनवाया था मंदिर के साथ संयुक्त संघाराम में बाद में जो सम्वर्धन हुए वे भी शायद इसी ने कराये थे।

प्रायः मिलता है। इसमें 'कार्य-कारण परम्परा' पर बुद्ध के सिद्धान्त का विशद वर्णन है। यह 'कार्य कारण परम्परा' अथवा 'कार्य-कारण-रूप भाव' इस प्रकार हैं—अविद्या से संस्कार, संस्कारों से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नाम रूप में छः इंद्रियां (षडायतन), इंद्रियों से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से आसक्ति (उपादान), आसक्ति से भव, भव से जाति (जन्म), जाति (जन्म) से जरा, मरण, शोक आदि। अविद्या के निरोध से उसके कार्य रूप संस्कार आदि सब दोष दब जाते हैं और अन्त में जरा, मरण, शोक आदि से आत्यन्तिक छुटकारा हो जाता है।

संख्यांक 3-278ए वाली ईट पर गुप्त सम्वत् 197 (ई॰ 516-17)[2] अंकित है। इसकी सहायता से हम मुख्य मंदिर की पाँचवीं आबादी का काल ईसवी पाँचवी सदी नियत कर सकते हैं। एक दूसरी ईट पर यही निदान अपने विभङ्ग पहले हमें केवल चीनी भाषा में अनुवाद के रूप में ही मालूम था[3]।

मुद्राछापें और टिकड़ियां—मुद्राछापों और टिकड़ियों की जो बहुत बड़ी संख्या नालन्दा से उपलब्ध हुई है दो वर्गों में विभक्त हो सकती है—(1) धार्मिक और (2) व्यावहारिक। पहले वर्ग की वे मुद्राएं हैं

---

1. बौद्ध मंत्रों और धार्मिक लेखों को स्तूपों के अंदर गाड़न का उद्देश्य निस्सन्देह सुकृत या पुण्य प्राप्त करना था। चैत्यों के अन्दर बुद्ध के धातुओं और कार्य-कारण परम्परा पर -'ये धर्मा' आदि गाथा के गाड़ने की प्रथा का उल्लेख आई-त्सिंग ने भी किया है (तक कुसु, वही, पृ॰ 150)। स्मरण रहे कि कुषाण सम्राट् कनिष्क ने चौथी बौद्ध संगीति के द्वारा रचित कुछ बौद्ध धार्मिक लेखों को ताम्रपट्टों पर खुदवा कर तथा उन्हें पत्थर की मंजूषा में रख कर उन पर स्तूप बनवाया था। बील, कार्डस, 1, पृ॰ 156।

2. एपिग्राफिया इंडिका, 24, (1937-38), पृ॰ 20

3. एपिग्राफिया इंडिका, 21 (1931-32), पृ॰ 194

जिन पर केवल बौद्धमंत्र, या कभी-कभी बुद्धमूर्ति के सहित बौद्धमंत्र, अथवा केवल बुद्धमूर्ति ही पाई जाती हैं बहुत सी मुद्राएं नालन्दा-महाविहार के कार्यालय की है जिन पर 'श्री नालन्दा-महाविहारीया-र्य-भिक्षु-सङ्घस्य' लेख अंकित होता है, जिसका अर्थ है "नालन्दा के महाविहार के आर्य भिक्षुसंघ की।" लेख के ऊपर धर्मचक्र होता है और इसके दोनों पार्श्वों में एक-एक हिरन। हिरन सारनाथ के 'मृगदाव' के सूचक हैं जहाँ बुद्ध ने अपने धर्म का पहला व्याख्यान दिया था इस अभिप्राय को पाल राजाओं ने भी अपनाया था नालन्दा के पृथक्-पृथक् विभागों की मुद्रा छापें भी मिली हैं। यहाँ उस उपलब्धि का उल्लेख करना भी आवश्यक है जो चैत्य स्थल 12 के पास एक उद्देशिका स्तूप में एक हज़ार के लगभग मिट्टी की कच्ची मंजूषाएं मिली थीं। हर एक मंजूषा में दो छोटी टिकड़ियां थीं जिनके लेखांकित पार्श्व परस्पर जुड़े हुए थे।[1] इन लेखांकित टिकड़ियों के प्रयोजन का पता लगाना कठिन है सम्भव है कि विशेष पुण्य की प्राप्ति के लिये इन्हें यहाँ गाड़ दिया हो, अथवा बाहर से आये हुए नालन्दा के यात्रियों को ये स्मारक के रूप में वितरण की जाती हों।

सांसारिक व्यवहार की मुद्राछापों में ऐतिहासिक दृष्टि से वे बहुत महत्त्व की हैं जो समकालीन राजाओं की थीं, जैसे गुप्तवंश के नरसिंह गुप्त और कुमारगुप्त द्वितीय की, मौखरिवंश के शर्ववर्मन् और अवन्तिवर्मन् की, आसाम के राजाओं सुप्रतिष्ठित वर्मन् और भास्कर-वर्मन् की, कन्नौज के हर्षवर्धन की, और किसी अज्ञात-राजवंश के राजाओं पशुपतिसिंह, देवसिंह और ईशानसिंह की।

वैयक्तिक मुद्राछापों पर अनेक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं। कई मुद्राएं विशेष कार्यालयों की भी है। इनमें ये वर्णनीय हैं—मगध भुक्ति में

1. पहाड़पुर में प्राप्त तारादेवी की लेखांकित टिकड़ियों से इनकी तुलना कीजिये।

कुमारामात्य का कार्यालय; गया विषय ज़िले का कार्यालय, नगर (पटना) भुक्ति के कुमारामात्य का कार्यालय, आदि।

(ग) विविध

नालन्दा से प्राप्त सिक्कों में नीचे लिखे लेख उल्लेखनीय हैं— गुप्तवंश के कुमारगुप्त प्रथम और नरसिंहगुप्त के, बंगाल के राजा शशाङ्क (ई० 1114-55) के। ये सब सिक्के इस समय इंडियन म्यूज़ियम कलकत्ता में हैं।

उकेरी के काम वाली ईटें वास्तुओं की सजावट के लिये इस्तेमाल की जाती थीं। इन पर मनुष्यों और पशुओं की मूर्त्तियां, कीर्तिमुख, फूलों वाले मंडल आदि उत्कीर्ण हैं।

मृण्मय बरतनों में अभ्रक मिश्रित मिट्टी के बने टोंटी वाले मटके हैं जिन पर पशु और फूल पत्ती आदि नक्श बने हैं।

जले हुए चावलों का जो छोटा सा ढेर नालन्दा में मिला वह अग्निकांड का स्मारक था। सम्भवतः यह स्थान कई बार अग्निकांड का शिकार बन चुका था।

नवीन उपलब्धियाँ

नालन्दा महाविहार परिसर के अंतर्गत अवस्थित सराय टीला की खुदाई सन् 1974-82 के मध्य की गई जिसके परिणामस्वरूप भित्ति चित्रों तथा भगवान् बुद्ध की विशालकाय गच-प्रतिमा (स्टको) के चरण भाग से युक्त एक मंदिर के अवशेष अनवृत हुए हैं। आर्द्रता व तापमान के प्रतिकूल प्रभाव से अधिकांश भित्तिचित्र नष्टप्राय हो गए हैं तथापि कुछ पहचाने जा सकते हैं जिनमें हाथी का चित्र, हाथ में दर्पण लिए एक नृत्यांगना, आसीन जम्भल तथा गर्भगृह की पृष्ठ भित्ति पर बनी सज्जा-वल्लरी इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

वर्ष 2004-05 में नालन्दा के मंदिर संख्या-3 के दक्षिण तथा पश्चिमी भाग में अनेक लघुकाय मनौती स्तूपों तथा मंदिरों के अवशेष अनावृत किए गए हैं। इनमें एक रथाकार मंदिर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जो मिट्टी के गारे की सहायता से ईटों द्वारा बना है तथा गच-निर्मित तीलीदार चार पहियों से युक्त है।

पुस्तक-सूची

जे॰ लेग्गे, ट्रवल्स ऑफ फाहियान (ऑक्सफर्ड 1886)

एस बील, बुद्धिस्ट रेकार्ड्स ऑफ वेस्टर्न वर्ल्ड (बाई ह्वेन सां) (लंडन, 1906), 2 भाग।

एस बील, लाईफ ऑफ ह्वेनसांग (लंडन, 1911)

टी वाट्टर्स, ऑन युआन च्वांग (लंडन, 1904)

जे॰ तककुसु, ए रेकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन (आई-त्सिंग के द्वारा) (आक्सफर्ड, 1886)

एफ॰ ए॰ शाइफनर, तारानाथस् गेस् शीष्टे ड्रेस बुद्धिज्मस इन् इंडिएन।

एस॰ सी॰ दास, इंडियन पण्डितस् इन दि लेंड ऑफ स्नो (कलकत्ता, 1893)

पी॰ एन॰ बोस, इंडियन टीचर्स ऑफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज़ (मद्रास, 1923)

एस॰ सी॰ विद्याभूषण, हिस्टरी ऑफ इंडियन लाजिक (कलकत्ता, 1921)

जे॰ एन॰ समद्दर, ग्लोरीज़ ऑफ मगध (पटना, 1927)

एच॰ शास्त्री, 'नालन्दा इन एन्शेंट लिटरेचर' प्रोसीडिंग्स ऑफ दि फिफ्थ ओरिएंटल कान्फेरेंस, 1, 1930 (पूना 1920)

ए॰ जे॰ बर्नेट कैम्पर्स, दि ब्रांज़ज़ आफ नालन्दा एंड हिंदू जावानीज़ आर्ट (लाइडन, 1933)

एच॰ डी॰ सांकलिया, यूनिवर्सिटी ऑफ नालन्दा (मद्रास, 1934)

एन्युअल रिपोर्ट, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, ईस्टर्न सर्कल 1915-16-1920-21

एन्युअल रिपोर्ट, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1915-16 एंड आनवर्ड्स

संग्रहालय-पुरावस्तुओं की अनुक्रमणिका

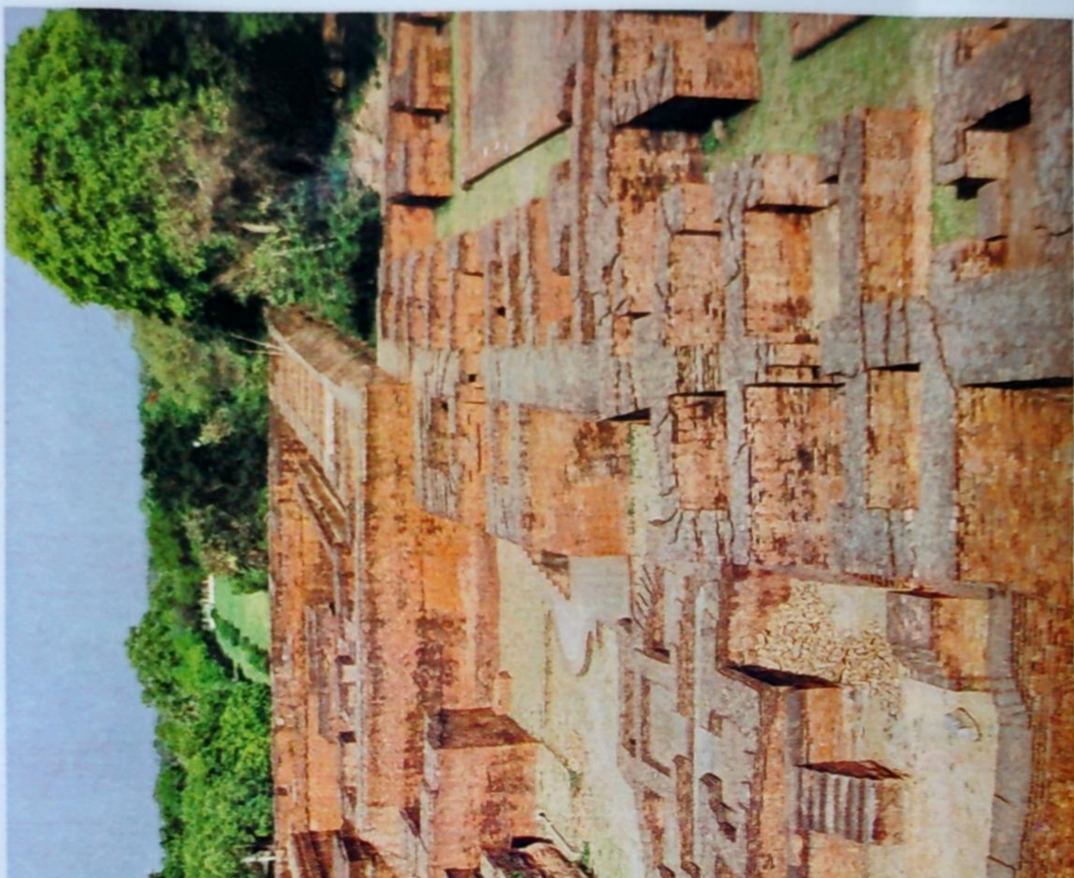
नोटः- चिन्हित पुरावशेष वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहीत है।



मुख्य मन्दिर स्थल 3

फलक 1

फलक 2



संघाराम स्थल 1 और 1-क



क-बुद्ध अभय मुद्रा में (काँसे का)



ख-विष्णु (काँसे का)

फलक 4



अवलोकितेश्वर, तारा तथा भृकुटि से सेवित (पत्थर का)



खसर्पण (पत्थर का)



क-पद्मपाणि (पत्थर का)



ख-पद्मपाणि (काँसे का)



अठारह भुजाओं वाली देवी, सम्भवतः
प्रज्ञापारमिता व्याख्यान मुद्रा में (काँसे की)



क-नागार्जुन (1) (पत्थर का)



ख-चार भुजाओं वाली देवी (पत्थर की)

नालन्दा के उत्खनित अवशेष

